शोध गवेषणा

हाटी समुदाय गिरिपार सिरमौर के दुर्गम भौगोलिक क्षेत्र का मौलिक निवासी है और प्राचीन काल से ही विशिष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विशेषताओं का पालना रहा है I जौंसार बावर के तरह ही यहाँ भी वाजिव-उल-अर्ज व दस्तूर-उल-अमल का प्रचलन रहा है जिसे हाटी बोली में रिवाज-ए-आम कहते हैं I1815 में सगौली की संधि के उपरान्त सिरमौर रियासत से जौंसार-बावर का क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन चला गया और अंग्रेजों ने इस क्षेत्र पर अपना प्रशासनिक नियंत्रण स्थापित करने के लिए कैप्टन विर्च ने इस क्षेत्र में प्रचलित रीति-रिवाजों को संहितावद्ध किया और कालांतर में यही दस्तावेज 1967 ई० में जौंसार बावर के जौंसारा समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में घोषित करने का आधार बना I गिरिपार सिरमौर के हाटियों और जौंसारा जनजाति में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व भौगोलिक समानताएं होने के साथ-साथ एक ही ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सदियों से जुड़ाव रहा है I वर्ष 1979 में राष्ट्रीय अनुसूचित जाति व जनजाति आयोग की अनुशंसा के उपरान्त भी गिरिपार सिरमौर के हाटी समुदाय को लगभग छह दशकों तक शांतिपूर्ण आन्दोलन लड़ना पड़ा और इस संघर्ष यात्रा में कई उत्तार-चढ़ाव आए जिसका मुख्य कारण था शोधपरक हाटी साहित्य का अभाव तथा राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी I

हाटी जनजाति आज भी अपने मूल सामाजिक, सांस्कृति एवं आर्थिक लक्षणों के साथ हिमाचल प्रदेश की दस अन्य जनजातियो की तरह शताब्दियों से अपनी पहचान बचाए हुए हैं I आदिम संस्कृति, भौगोलिक पृथकता, पिछड़ापन, बाह्य समुदायों के साथ सम्पर्क में संकोच जैसी विशेषताएं आज भी विद्यमान हैं; बस आवश्यकता है गहन व विस्तृत शोध की जिसके माध्यम से हाटी अपनी मूल पहचान को वैश्विक पटल पर स्थापित करने में सफल होंगे I उम्मीद है युवा शोध कर्ता अपनी ज्ञान पिपासा व शोध गवेषणा अनुरूप भविष्य में हाटी की विशिष्ट संस्कृति के अहम् पहलुओं को सुधि पाठकों के समक्ष अवश्य प्रस्तुत करेंगे I हाटी जनजाति पर शोध कार्य करने वाले शोधार्थियों के मार्गदर्शन अव सहयोग हेतु कुछ बहुपयोगी पुस्तकों व दस्तावेजों का संक्षिप्त विवरण निम्न रूप से प्रदान किया जा रहा है:

1. सिरमौर गज़ेटियर, 1904, 1934, 1961
2. कंवर रंजौर सिंह कृत-तारीख-ए-रियासत सिरमौर, 1912
3. डॉ० यशवंत सिंह परमार कृत, Polyandry in Himalayas, 1975
4. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग की रिपोर्ट, 1979
5. कन्हैया लाल की अध्यक्षता में गठित विधान सभा याचिका समिति रिपोर्ट, 1992
6. सिरमौर भूमि बंदोवस्त रिपोर्ट, 1929-30
7. डी एन मजूमदार कृत-Himalayan Polyandry, 1961
8. डॉ० एस के गुप्ता समिति रिपोर्ट, 1994
9. हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के जनजाति अध्ययन संस्थान की रिपोर्ट 2014-16
10. हिमाचल प्रदेश जनजातीय शोध संस्थान, शिमला की रिपोर्ट, 2017
11. पवन बक्शी कृत, गिरिपार का हाटी समुदाय
12. डॉ० अरुण भरद्वाज का पीएच० डी० शोध-An Ethnographic Study of the HATTI Community of District Sirmour, Himachal Pradesh, 2018
13. विवेक तिवारी द्वारा निर्मित व निर्देशित लघु फिल्म-HATTI: WE EXIST, जिसे 6 राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हैं
14. श्री मंगल सिंह कृत-हारुल
15. बारू राम ठाकुर सम्पादित पुस्तक-हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक धरोहर व हिंचल प्रदेश की सांस्कृतिक विरासत, 2024, 2026
16. डॉ० अंकुश भरद्वाज सम्पादित पुस्तक-गाँव का इतिहास भाग-1

कुछ मौलिक शोध पत्र जिनका प्रकाशन विभिन्न पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में हुआ है निम्न रूप से उपलब्ध हैं:

1. **गिरिपार क्षेत्र सिरमौर के परम्परागत लोक जीवन में प्रकृति व पर्यावरण का महत्व-**देवेन्द्र कुमार सहायक आचार्य भूगोल विभाग, राजकीय स्नाताकोत्तर महाविद्यालय नाहन, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश
   Email ID: - devendergeo@gmail.com Mb. No. 9459989692
2. **हाटी जनजाति की समृद्ध खाद्य परम्परा-**अनीता ठाकुर, ग्राम झकांडो, उप-तहसील रोनहाट, सिरमौर, हिमाचल प्रदेश
3. **गिरीपार सिरमौर की हाटी जनजातीय संस्कृति केपरम्परागत लोक परिधान व आभूषण-**बारू राम ठाकुर, सहायक आचार्य-इतिहास, डॉ० यशवंत सिंह परमार राजकीय सनात्कोत्तर महाविद्यालय नाहन

गिरिपार क्षेत्र सिरमौर के परम्परागत लोक जीवन में प्रकृति व पर्यावरण का महत्व

देवेन्द्र कुमार, सहायक आचार्य भूगोल विभाग
राजकीय स्नाताकोत्तर महाविद्यालय नाहन, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश
Email ID: - devendergeo@gmail.com Mb. No. 9459989692

(प्रकाशित लेख)

शोध सारांश

गिरिपार क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिला की पहाड़ियों के बीच बसा हुआ एक अति सुन्दर व मनमोहक भू-भाग है । इस क्षेत्र का अपना विशेष प्राकृतिक और सांस्कृतिक महत्त्व है । प्राकृतिक रूप से इसकी सुन्दर पहाड़ियाँ वनों से ढकी हुई है जबकि सांस्कृतिक रूप से यह भौगोलिक भू-भाग सिरमौर जिला के अन्य भागों से पूर्ण रूप से भिन्न है । यह शोध स्थानीय लोगों का पारिस्थितिकीय वातावरण के बीच संबंधों को समझने का प्रयास है । एक बहुआयामी दृष्टिकोण के माध्यम से जनजातीय अध्ययन, पारिस्थितिकीय मूल्यांकन और सांस्कृतिक विश्लेषण भी शोध के विषय में सम्मिलित है । विभिन्न परंपरागत प्रथाओं और रीति-रिवाजों के दौरान प्रयोग की जाने वनस्पतियों का महत्त्व भी विषय में शामिल है । गिरिपार के लोगों द्वारा धार्मिक कार्यों के दौरान प्रयोग की जाने वाली प्राकृतिक वनस्पतियों जैसे कुशा, जूब, पाजा, छाम्बर, कथुचाड़, पीपल, आम, देवदार, केला आदि के महत्त्व तथा स्थानीय लोगों द्वारा कई प्रकार की जड़ी-बूटियों जैसे बेनक्सा, बिरालई को झाल, छिछरोली, कड़ु, बुशोंटी, तिम्बुर, भाउकुम्ब, नोना, पटकिरा, गानी, कोड़ुअण,

हड़सील, ऐड़ आदि को विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार के लिए प्रयोग किया जाता है । सांस्कृतिक गतिविधियों में भी वनस्पति का उपयोग इस क्षेत्र की अलग पहचान है । वर्तमान समय में इस क्षेत्र की कृषि व बागवानी वनस्पतियों के बारे में भी जानना आवश्यक है क्योंकि यहाँ के लोगों की आय में इनका प्रमुख स्थान है । भौगोलिक रूप से दुर्गम गिरिपार क्षेत्र का लोक जीवन चुनौतीपूर्ण है लेकिन पर्यावरण और सांस्कृतिक आधार पर सिरमौर जिला में इसकी पहचान अलग है । यह शोध पत्र मानव समाज और प्राकृतिक परिवेश के बीच की जटिल गतिविधियों को गहराई से समझने में सहायक सिद्ध होगा । यह अध्ययन गिरिपार की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने व आधुनिक पर्यावरणीय चुनोतियों के बीच सामंजस्य भी स्थापित करेगा ।

संकेत शब्द : गिरिपार, रीति-रिवाजों, प्राकृतिक वनस्पतियों, जड़ी-बूटियाँ, सांस्कृतिक धरोहर ।

1. प्रस्तावना : -

भौगोलिक दृष्टि से हिमाचल प्रदेश एक पर्वतीय क्षेत्र है, जिसे देव भूमि भी कहा जाता है । इस प्रदेश के दक्षिणी भाग में स्थित सिरमौर जिला के गिरिपार क्षेत्र का अपना विशेष भौगोलिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व है । प्राकृतिक रूप से चूड़धार, नोहराधार, हरिपुधार, चाँदपुरधार, जुईनिधार, शिलाई व राजगढ़ की पहाड़ियाँ तथा वनों से ढके क्षेत्र इसकी सुन्दरता को चार चाँद लगाते है जबकि सांस्कृतिक आधार पर तो यह भू-भाग अपना विशेष महत्त्व रखता है । इस क्षेत्र को भारत सरकार द्वारा सन 2022 में जनजातीय क्षेत्र घोषित किया गया है क्योंकि भौगोलिक दृष्टी से वर्तमान समय में भी इसके कई स्थान अति दुर्गम है जबकि सांस्कृतिक आधार पर यहाँ के लोगों का खान-पान, रीति-रिवाज, पहनावा, भाषा, बोलियाँ आदि जिला सिरमौर के अन्य भागों से पूर्ण रूप से भिन्न है । यह शोध पत्र गिरिपार क्षेत्र के लोगों का पारिस्थितिक तंत्र के साथ समन्वय को समझने का एक प्रयास है । प्रकृति द्वारा मानव को प्रदान की गई वनस्पति को लोगों द्वारा अपनी दैनिक गतिविधियों व सांस्कृतिक पहलूओं के साथ इनका परम्परागत उपयोग यहाँ के मानवीय जीवन पर जो प्रभाव डालता है, उसे जानना और समझना अति आवश्यक है ।

गिरिपार क्षेत्र में कई प्रकार की प्राकृतिक वनस्पतियाँ पाई जाती है जिनका उपयोग पूजा, इमारती लकड़ी, औषधि आदि के रूप में स्थानीय लोगों द्वारा किया जाता है । पीपल, बड़, केला, जूब, पाजा, आँक, केलों, छाम्बर, आँक आदि का प्रयोग पूजा और विभिन्न अनुष्ठानों में किया जाता है । बेनक्सा, भाउकुम्ब, नोना, पटकिरा, गानी, कोड़ु, कोड़ुअण आदि का उपयोग औषधि के रूप में तथा तिरमल, कुइंथ, काफल, चइतरो, छलीक, बिजोरी, जाम्बुर, डान्डीयो आछुओं, आंवला आदि पेड़-पोधों से लोगों द्वारा फल प्राप्त किए जाते है । इसके साथ-साथ रोइ, चीअ, बान, मोइरू, तून आदि

इमारती वनस्पतियाँ तथा सबसे महत्वपूर्ण केलों, पाजा, ओखोड़, बियुल, खड़ीक, कशमल, थूम्बई जैसे विभिन्न उपयोग वाले पेड़-पोधों इस क्षेत्र के लोगों के जीवन का हिस्सा है । वनस्पतियाँ जैसे कुकुआ, भाबर, पापड़ी, गुड़यालटी, फाफरा, बाथू, भथला, बढ़यालटो, चीचा, चियाऊँ, कुवेड़ु, जंगली सुतौउले,पुदना, छम्बरीला, अमेड़ा, तिम्बुर, ओडो आदि को सब्जी एवं चटनी बनाने में भी प्रयोग किया जाता है ।

वर्तमान समय में इस क्षेत्र के लोगों की आय का प्रमुख साधन कृषि व बागवानी है । इसी कारण इस क्षेत्र में पाई जाने वाली कृषि व बागवानी से सम्बंधित वनस्पतियों के बारे में जानना आवश्यक है । कृषि से सम्बंधित वनस्पतियों में खाद्यान जैसे गिहूँ, जौ, धान, कुकड़ी, कुदोअ, चउलाई, शांवक, चिणोई, कावणी, ओगला तथा दालों में बालड़ी, राजमा, लोबिया, माशो, भट्टो, रांगुणो, मुसरो, कुल्थो आदि प्रमुख है जबकि सब्जियों में फूल गोभी, पत्ता गोभी, आलू, टमाटरो, मटरो, मूली, गाजर, बीन, बतीया, तोरोई, चाचरेंडे, प्याजो, लहसणो, कददू, मीठा करेला, कड़वा करेला आदि तथा तिलहन फसलों में शेरोंअ, राई, तीलो, सूरजमुखी, भंगजीरो आदि प्रमुख है । बागवानी में सेव, आम, आड़ू, चुलुवों, पालमों, आरुवों, किवी, नाशपाती, निम्बू, अमरूद, पपीता आदि का प्रमुख स्थान है ।

वनस्पतियों का उपयोग परम्परागत रूप से धार्मिक, सांस्कृतिक और वर्तमान समय में आर्थिक गतिविधियों में भी किया जा रहा है । यह शोध कार्य यह जानने का प्रयास है कि आधुनिक युग में भी गिरिपार क्षेत्र के लोग प्रकृति की अमूल्य सम्पदा का न सिर्फ उपभोग कर रहे हैं अपितु यहाँ के लोग विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के लिए वनस्पतियों पर निर्भर है । गिरिपार क्षेत्र की पारंपरिक मान्यताओं एवं वर्तमान आवश्यकताओं में वनस्पतियों का बहुत गहरा स्थान है जो कि इस क्षेत्र के लोगों की आध्यात्मिक और सामुदायिक पहचान को सशक्त करता है ।

2. शोध प्रविधि

यह शोध गुणात्मक और व्याख्यात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है । गुणात्मक दृष्टिकोण से जानकारी प्राप्त करने के लिए गिरिपार क्षेत्र के लोगों विशेषकर बुजुर्गों तथा धार्मिक कार्यों से जुड़े लोगों का साक्षात्कार लिया गया है । इस क्षेत्र की धार्मिक, उत्सव व दैनिक गतिविधियों का अवलोकन के साथ-साथ प्रकृति और पर्यावरण के महत्व पर भी लोगों से गहन चर्चा भी की गई । व्याख्यात्मक दृष्टिकोण से स्थानीय परम्पराओं व पर्यावरण के आपसी सम्बधों को जानना का भी प्रयास है । इसमें प्राकृतिक वनस्पति के साथ-साथ कृषि और बागवानी से सम्बंधित वनस्पतियों के बारे में जानने का प्रयास किया है जो कि गिरिपार क्षेत्र के जनमानस की सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक गतिविधियों पर केवल प्रभाव नहीं डालती है बल्कि उनके उपयोगों को जानने में अवश्य ही सहायक सिद्ध होगा ।

3. गिरिपार क्षेत्र में पाई जाने वाली प्राकृतिक वनस्पतियाँ

भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं वाला सिरमौर जिला का गिरिपार क्षेत्र कई प्रकार की प्राकृतिक सम्पदाओं का भण्डार है । इस क्षेत्र के वनों में परम्परागत रूप से प्रयोग की जाने वाली विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक वनस्पतियाँ लोगों के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । प्राकृतिक वन सम्पदा देवीय कार्यों, औषधि, गृह निर्माण, फलों की प्राप्ति आदि के रूप में लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाती है ।

3.1 देवीय व देव कार्यों में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ

देवी-देवताओं की पूजा, धार्मिक अनुष्ठानों और अन्य आध्यात्मिक कार्यों में विशेष प्रकार की वनस्पतियों का उपयोग किया जाता है । इस क्षेत्र में परम्पराओं को जानने और समझने में वनस्पतियों का बहुत महत्व है । भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधताओं वाले गिरिपार क्षेत्र में कई प्रकार की प्राकृतिक वनस्पतियाँ जैसे केला, पीपल, बेलपत्र, बड़, भैकों, जूब, कांश, छाम्बर, ढाक, गूलर, आंक, पाजा, कथुचाड़, जामुन, भु, भोजपत्र, शामी, बुराड़ोई आदि का इस्तेमाल देवीय कार्यों में किया जाता है ।

i. **पीपल : -** पीपल की पत्तियों का उपयोग पूजा व धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता है । इस क्षेत्र में सत्यनारायण व्रत कथा का प्रचलन अधिक होने के कारण इस पेड़ के पत्तियों को धागे में पिरोकर माला बनाई जाती है जिसे घर के प्रवेश द्वार में लगाया जाता है । लोगों का विश्वावास है कि यह माला उनके घरों को बुरी शक्तियों से बचाती है । इस वृक्ष को या इसकी टहनियों को काटना केवल अशुभ ही नहीं माना जाता बल्कि ऐसा करने वाला देवता के दोष व प्रकोप का भागीदार माना जाता है ।

ii. **बड़ (बरगद), गूलर और जामुन : -** इन वृक्षों के पत्तों का उपयोग अनुष्ठानों के दौरान कलश यात्रा में कलश में सजाए जाते है ।

iii. **केला : -** गिरिपार क्षेत्र में केले के पोधों, पत्तियों व फल का प्रयोग पूजा के लिए किया जाता है । इस क्षेत्र में केले के फल का आकार और स्वाद बाज़ार के केले से बिलकुल भिन्न होता है ।

iv. **बेलपत्र : -** इस पेड़ के पत्तों का प्रयोग हवन, यज्ञ व शिव भगवान की विशेष पूजा के समय उपयोग किया जाता है । बेलपत्र के फलों को भी नागतिला की पूजन सामग्री के साथ रखा जाता है ।

v. **छाम्बर : -** छाम्बर के फूल और पत्तों का इस्तेमाल अनुष्ठानों के दौरान या किसी विशेष पूजा के समय किया जाता है ।

vi. **भैकों : -** यह एक कांटेदार पौधा होता है जिसकी टहनियों का आगे का भाग तोड़कर दूध-गौमूत्र के छिड़काव के लिए प्रयोग किया जाता है । जब गाँव में देवी या देवते का जागरा (जागरण) होता है तो जिस रास्ते से इनकी पालकियां निकलती है उस रास्ते को शुद्ध करने के लिए इस पौधे के डंठल से दूध-गौमूत्र का छिड़काव किया जाता है ।

vii. **जूब : -** जूब (धुर्वा) का उपयोग हर तरह की पूजा में किया जाता है । जब किसी के घर बेटे का जन्म होता है तो गाँव के देवता की नबद (पूजा के समय ढोल और नगाड़ा बजाना) करने वाले लोग जिस घर में बेटे का जन्म होता है, उस घर के पुरषों को जूब भेंट करते हैं । इसके बदले में उनको यथासंभव धन व अन्य उपहार भेंट किये जाते है ।

viii. **कांश : -** कांश (कुशा) एक प्रकार की तिल्लिदार घास है । इसका प्रयोग पूजा के दौरान आसन के पास रखा जाना शुभ माना जाता है ।

ix. **आंक: -** इस पेड़ के पत्ते पूजा के लिए जबकि इसकी लकड़ियों को हवन में प्रयोग किया जाता है । इससे निकलने वाला दूध औषधि के रूप में लोग उपयोग किया जाता है ।

x. **पाजा व कथुचाढ़ : -** इन पेड़ों की पत्तियों को तोड़कर घी से साथ मिलाकर, उसे पूजा की अग्नि में डाला जाता है । उसके बाद उससे निकालने वाला हूम (धुंवा) पूरे घर में घुमाया जाता है जिससे घर में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है । जानकारों का मानना है कि कथुचाढ़ केवल कथुरा (कस्तूरी मृग) द्वारा खाया जाता है ।

xi. **भु : -** यह एक प्रकार की फूल वाली झाड़ी है । गिरिपार के कई क्षेत्रों में अश्विन माह की अष्टमी को भु अर्थात भुराड़ी की पूजा करना अत्यंत शुभ माना जाता है ।

xii. **भोजपत्र : -** भोज पेड़ की छाल से भोजपत्र प्राप्त किया जाता है । भोजपत्र चुड़धार के जंगलों में ज्यादातर पाया जाता है । इस क्षेत्र में पंडितों द्वारा इसे विभिन्न जन्तरों को लिखने के लिए उपयोग में लाया जाता है ।

xiii. **शामी : -** शामी (शमी) के पत्तो ं को शनिदेव की पूजा के लिए विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है ।

xiv. **ढाक : -** इसकी लकड़ियों को हवन में प्रयोग किया जाता है ।

xv. **बुराड़ोई : -** यह एक ऐसा पौधा है जिसमें बारह वर्ष बाद फूल खिलते हैं । इसके फूल और पत्तों का इस्तेमाल भी पूजा में किया जाता है ।

3.2 इमारती लकड़ियों, कृषि व अन्य उपकरणों में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ

गिरिपार क्षेत्र में वनस्पतियों का उपयोग इमारती लकड़ी, कृषि उपकरणों में, बिभिन्न प्रकार के वर्तनों को बनाने तथा इंधन के रूप में भी स्थानीय लोगों द्वारा प्रयोग की जाती है ।

i. **इमारती लकड़ियों वाली वनस्पतियाँ : -** इस क्षेत्र में इमारती लकड़ियों के रूप में केलों (देवदार), रोइ, चीअ, सपेदा, बान, मोइरू, तून, ओखोड़, शीशम, छानण, शिमोल, भदल, पड़ग, खड़ीक, किमु, साल, चिलारंअ, ककड़ालअ, कऊ, भुंडीर आदि की लकड़ियों का प्रयोग दरवाजों व खिड़कियों की चौखटों व पल्लों के निर्माण और मेड़ (फर्श) के रूप में घर निर्माण में किया जाता है । गिरिपार क्षेत्र के अधिकतर भागों में आज भी घरों के अधिकतर कमरों में फर्श के स्थान पर लकड़ियाँ लगाई जाती है जिसे स्थानीय भाषा में मेड़ कहा जाता है ।

ii. **कृषि उपकरणों में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ : -** कृषि उपकरणों में हल, जुआईं या शमाईं, मोइड़ा या मोई तथा कशी (कश्ली), फावड़ा, पांजी, गोंइति (गैंती), बेलचा, डांगरा, दाच (दाराट), दाची (दाराटी) आदि उपकरणों के बेंडे (हैंडल) के लिए बान, मोइरू, खईर, रेहूश, कऊ, भतनो, थुम्बोई आदि की लकड़ियों का इस्तेमाल किया जाता है ।

iii. **बर्तन व अन्य वस्तुओं को बनाने में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ : -** इस क्षेत्र में पाई जाने वाली कुछ वनस्पतियों जैसे से परम्परागत बर्तन हाण्डे व कछाली (दही मथने के लिए), परात, कड़छी, पलटे आदि बनाने के लिए शिंगीर, तिरमल, खेर आदि वनस्पतियों का प्रयोग किया जाता है । रेहूश, बांश, , थुम्बोई, कऊ आदि वनस्पतियों के डिंगे (डण्डे) तथा हुलुवी (घास ढोने का डण्डा) बनाए जाते है ।

3.3 औषधि के रूप में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ

वनस्पतियों की विविधताओं वाला गिरिपार क्षेत्र कई प्रकार की औषधि प्रदान करने वाली वनस्पतियों के लिए भी बहुत प्रसिद्ध है । इस क्षेत्र विशेष में पाई जाने वाली औषधि के रूप में उपयोग की जाने वाली वनस्पतियों में बेनक्सा, बिरालई को झाल, छिछरोली, कड़ु, बुशोंटी, तिम्बुर, भाउकुम्ब, नोना, पटकिरा, गानी, कोड़ुअण, अम्बर बेल, शु ंवालअ, हड़सील, ऐड़, ढेडणा, शातारो, बनकुपड़ु, बुठावा, फूमा, पियोणी, डुमतोली आदि प्रमुख है ।

i. **बेनक्सा : -** बेनक्सा को फुल्टू भी कहा जाता है । ये छोटे-छोटे कई प्रकार फूल होते है जो कि मार्च-अप्रैल के महीनों में अधिक ऊँचाई वाले भू भागों में पे जाते है । इनको डंठल सहित तोड़कर सुखाया जाता है । इसका काढ़ा बनाकर सर्दीयों में बुखार, जुखाम एवं प्रसूति के पश्चात महिलाओं को दिया जाता है ।

ii. **बिरालई को झाल (शतावर): -** यह एक बहुमूल्य जड़ों को काटकर सब्जी बनाई जाती है । यह शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्ति को अधिकतर खिलाई जाती है । यही नहीं इसकी जड़ों का पाउडर बनाकर कमजोर मनुष्यों को दूध के साथ जबकि पशुओं को आटे में मिलाकर खिलाया जाता है ।

iii. **छिछरोली : -** यह एक अति महत्वपूर्ण जड़ी-बूटी है । इसकी जड़ों को पानी में मिलाकर या किसी खुरदरे पत्थर के ऊपर रगड़कर लेप बनाया जाता है । इस लेप को कान में कान पकने पर और सिर में निनाई (सर में फोड़े होना) की समस्या को दूर करने में रामबाण है ।

iv. **कड़ु : -** यह भी बहुमूल्य जड़ी-बूटी है । इसकी पत्तियों और छोटी टहनियों को कूटकर काढ़ा तैयार किया जाता है । यह काढ़ा पीने से बुखार, सिरदर्द, उच्च रक्तचाप जैसी बिमारियों से राहत मिलती है ।

v. **बुशोंटी : -** इस जड़ी-बूटी का प्रयोग पशुओं में निकाला (दूध में गन्ध आना या फटना) और पात जैसी बिमारियों से राहत प्रदान करने के लिए उपयोग में लाया जाता है । इसके अलावा मनुष्य हो या पशु दोनों को घुटनों में दर्द होने की स्थिति में भी प्रयोग किया जाता है ।

vi. **फूमा : -** इसकी जड़ें पिली होती है । इसकी जड़ों का पाउडर बनाकर यदि किसी व्यक्ति को सांप काट लेता है तो उस व्यक्ति को इसकी जड़ के पाउडर को पानी के साथ पिलाने से सांप का जहर उल्टी से बाहर निकल जाता है ।

vii. **तिम्बुर : -** तिम्बुर (तिम्बर) एक ऐसी वनस्पति है जिसके पत्तों को कूटकर विभिन्न सब्जियों में मसाले के रूप में उपयोग किया जाता है । पांव की उंगलियों में दर्द या सड़न होती है उनमें भी इसकी पत्तियों का लेप तैयार करके लगाया जाता है । इसकी टहनियों के छोटे-छोटे टुकड़े करके दातुन के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है । इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में इसके सीधे डण्डे को घर के प्रवेश द्वार के ऊपर कांटे निकाले बगेर लगाया जाता है । यहाँ के लोगों का मानना है कि ऐसा करने घर में बुरी आत्माओं को प्रवेश नहीं होता है ।

viii. **शुंवालअ : -** इसकी पत्तियों को पानी में उबालकर जिन लोगों को बाई की बिमारी होती है उनको ये उबला हुआ पानी पिलाने से बाई की बिमारी दूर हो जाती है ।

ix. **अम्बर बेल (गिलोई): -** स्थानीय भाषा में गिलोई को अम्बर बेल कहा जाता है । इसकी पत्तियों और टहनियों को सुखाकर, फिर उनको ओखल (ओखली) या शील में कूटकर या पीसकर इसका पाउडर तैयार किया जाता है । इसके पाउडर का काढ़ा बुखार से राहत प्रदान करता है ।

x. **हड़सील : -** हड़सील एक बहुगुणकारी वनस्पति है । ऐसी मान्यता है कि इसकी जड़ यदि महिला ग्रहण करती है तो उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है लेकिन इसे महिला को इसे बिना बातचीत किए खाना होता है । दातुन के तौर पर इसका प्रयोग किया जाता है ।

xi. **भाउकुम्ब : -** यह एक झाड़ीनुमा वनस्पति है । इसकी टहनियों और पत्तों ओखल (ओखली) को कूटकर आटे में मिलाकर सामग्री तैयार की जाती है जिसे पशुओं में निकाला नामक बिमारी के उपचार के प्रयोग किया जाता है ।

xii. **पटकिरा: -** इस पौधे के हरे पत्तों को पेट के कीड़े निकालने में उपयोग किए जाते है । इसकी पत्तियों को सुंघाकर तथा हरी पत्तियों को कूटकर पाँव में लगाने से पेट के कीड़े की समस्या से आराम मिलता है ।

xiii. **गानी : -** यहाँ एक छोटा सा पौधा है जिसकी पत्तियों को हाथ में मसलकर उससे निकलने वाला पानी पाँव की उँगलियों के बीच की सड़न में डालने से राहत प्रदान होती है जबकि इसकी जड़ों का जड़ को दांत के निचे दबाने पर उससे थोड़ा-थोड़ा रस जो निकालते ही जब गले में उतरता है तो गले की दर्द या टोन्सिल को भी ठीक कर देता है ।

xiv. **नोना : -** नोना को रोसायण भी कहा जाता है । इसके पेड़ की छाल को निकालकर उसे सुखाया जाता है । सुखाने के पश्चात छाल को कूटकर पाउडर तैयार किया जाता है । इसके पाउडर में गुड़ व हल्दी मिलाकर दूध के साथ पीने से अंदरूनी चोटें से आराम मिलाता है । इसके पाउडर को गौंच (गोमूत्र) में उबालकर लैप तैयार किया जाता है । ठण्डा

होने के बाद इसके लेप को मनुष्य और पशु की यदि हड्डी टूट जाती है तो जहाँ से हड्डी टूटी हो उस स्थान पर लगाया जाता है तथा उसके बाहर कपड़ा बाँधने से एक या दो दिन में ही हड्डी जुड़ जाती है ।

xv. **कोड़ुअण : -** इस पौधे की पत्तियां बहुत ज्यादा कड़वी होती है । इसकी पत्तियों को पानी में उबालकर जो रस तैयार होता है उसको एक चम्मच पानी में मिलाकर पीने से मधुमेह की समस्या का मुक्ति मिलती है । इसका जूस पीने से बाबासीर की समस्या भी दूर होती है ।

xvi. **ऐड़ और ढेडणा : -** इसके फलों के बीज को निकालकर इनको कूटकर छोटे-छोटे टुकड़े किए जाते है । इसके बाद इसको सरसों के तेल में पकाया जता है । ठण्डा होने पर तेल को किसी बर्तन में डाला जाता है । इसकी मालिश से घुटनों और कमर दर्द की समस्या दूर होती है ।

xvii. **बुठावा : -** इस पौधे के काफी गुण है । इस पौधों के जड़ और पत्तों को पानी में मिलाकर घोल तैयार किया जाता है । यदि किसी व्यक्ति को सांप काट लेता है तो इस घोल को घाव के ऊपर लागने से दर्द समाप्त हो जाता है । इसके अलावा इसकी जड़ों और पत्तों को आनाज के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाने से पशुओं के दस्त बंद हो जाते है ।

xviii. **बनकुपड़ु : -** इस पौधे की पत्तियों व फूलों को तोड़कर सुखाया जाता है । सुखाने के पश्चात इसका बारीक पाउडर तैयार किया जाता है । इसके पाउडर को मख्खन में मिलाकर सिर में निनाई (सर में फोड़े होना) की समस्या को दूर करने में रामबाण सहायक होता है । इसके पाउडर को पानी में उबालकर इसे साफ कपड़े में छान कर किसी छोटी शीशी में रख सकते है । यदि कान या नाक में दर्द हो तो एक-दो बूँद डालने से दर्द ठीक हो जाता है ।

xix. **डुमतोली : -** यह एक बहुत ही छोटा पौधा है । इसकी जड़ों को सुखाकर पीस दिया जाता है । इसके बाद इसे गौ मूत्र के साथ मिलाकर उबाला जाता है । जब ये काफी गाढ़ा हो जाता है तो ठण्डा होने पर शरीर में फोड़े पर लगाने से दो दिन में ही राहत मिलती है ।

xx. **शतारो : -** यह एक बहुमूल्य वनस्पति है । इसकी जड़ों के बाहरी छाल को उतारकर फैक दे । इसके बाद इसके छोटे-छोटे टुकड़े करके इसमें दो दाने लहसून, चार चम्मच घी तथा थोड़ा नमक डालकर पकाने के बाद इसका सेवन करने से शरीर को न केवल उर्जा प्राप्त होती है बल्कि हड्डियाँ भी मजबूत होती है । इसके विशेषज्ञों का मानना है कि इसको खाने से मर्दाना ताकत भी बढ़ती है । इसकी जड़ों को छोटा-छोटा काटकर फीड के साथ मिलाकर दूध देने वाले पशुओं को खिलाने से न केवल दूध की मात्रा बढ़ती है बल्कि घी भी अधिक बनता है ।

xxi. **पियोणी : -** इसकी जड़ को पीसकर सुबह-शाम उन महिलाओं को कच्चे दूध के साथ दिया जाता है जिनको सफेद पानी निकलने की समस्या रहती है । इसका एक सप्ताह उपयोग करने से यह समस्या पूर्णत: समाप्त हो जाती है ।

xxii. **कौवा ओखोड़ : -** यह एक छोटा पौधा होता है जिसमें छोटे- छोटे फल लगते है जो पकने पर कई पौधों में नारंगी, लाल और कई पौधों में काले हो जाते है । इसके पत्तों का काढ़ा बनाकर पीने से दमा, गैस और बुखार जैसी बीमारियों से छुटकारा मिलता है ।

3.4 फल देने वाली वनस्पतियाँ

गिरिपार क्षेत्र में कुछ स्थानीय वनस्पतियाँ ऐसी भी है जो फल देती है । इस तरह की वनस्पतियों में तिरमल, कुइंथ, काफल, चइतरो, छलीक, बिजोरी, जाम्बुर, डान्डु़ं, आछुओं, कलाच्छुवों, फेगुड़ा आदि है । यहाँ केवल उन प्राकृतिक फलदायी पेड़-पौधों की जानकारी दी जा रही है जो कि व्यापारिक रूप से कोई महत्त्व नहीं रखते लेकिन स्थानीय लोग इन प्राकृतिक फलों का इस्तेमाल समय-समय पर करते रहते है ।

i. **तिरमल: -** तिरमल एक ऐसा पेड़ है जिसमें जो फल लगते है उन्हें तिरमोलटु कहा जाता है । इस फल की विशेषता यह है कि यह बिना फूल के ही पेड़ में लगता है तथा यह काफी मीठा होता है ।

ii. **काफल : -** यह गिरिपार के ऊँचाई वाले क्षेत्रों में काफी पाया जाता है । इसके फल छोटे-छोटे होते है जो कि पकने के बाद गुलाबी रंग के हो जाते है । इसके फलों को काफोलटु कहते है जो काफी मीठे व स्वादिष्ट होते है ।

iii. **कुइंथ : -** यह वृक्ष काठी उंचा और कँटेदार होता है जिसमें लगाने वाले फल को कुइंथेलटु कहा जाता है । इसके फल पकने पर काले हो जाते है जो बहुत मीठे होते है ।

iv. **डान्डुं (अनार): -** इसके फल को डान्डीयो कहते है । बाज़ार के फल की तुलना में ये फल बहुत छोटा होता है । स्वाद में ये खट्टा मिट्ठा होता है ।

v. **आछुओं और कलाच्छुवों : -** आछुओं और कलाच्छुवों कांटेदार झाड़ीनुमा फल है । आछुओं के फल का रंग सुनहरा या नारंगी जबकि कलाच्छुवों का रंग काला होता है । ये फल काफी मीठे होते है ।

vi. **फेगुड़ा: -** फेगुड़ा (अंजीर) के पेड़ में लगने वाले फल को फेगड़ेलटु कहा जाता है । इस पेड़ में गहरे गुलाबी रंग के छोटे दाने वाले फल होते है । यह भी मीठे होते है ।

vii. **चइतरो : -** यह एक कांटेदार वनस्पति है । इसके फल खट्टेऔर मीठे होते हैं जबकि दाने छोटे-छोटे होते है । इसे नमक में मिलाकर खाया जाता है ।

viii. **सिंयार : -** यह एक ऐसा पौधा है जिसके फल बहुत छोटे-छोटे होते है जो कि पकने पर नारंगी हो जाते है । इसके फल स्वाद में बहुत मीठे होते है ।

ix. **भुम्बल : -** यह बहुत ही छोटा पौधा होता है जो कि गिरिपार के ऊँचाई वाले भागों में पाया जाता है । इसका पहल स्ट्राबेरी की तरह होते है लेकिन आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है

3.5 सब्जियाँ और चटनी में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ

वनस्पतियों के यद्यपि कई उपयोग होते है, किन्तु कुछ वनस्पतियाँ ऐसी भी है जिनको सब्जियों के रूप में तथा चटनी बनाने के लिए गिरिपार क्षेत्र में प्रयोग में लाया जाता है । इनमें कुकुआ, भाबर, पापड़ी, गुड़यालटी, फाफरा, बाथू, भथला, बढ़यालटो, चीचा, चियाऊँ, कुवेड़ु, जंगली सुतौउले, पुदना, छम्बरीला, अमेड़ा, तिम्बुर, ओडो आदि प्रमुख है ।

i. **कुकुआ और भाबर : -** कुकुआ (बिच्छूबुटी) और भाबर ऐसी कँटेदार वनस्पत्तियां है जिनकी सब्जी बनाई जाती है । कुकुआ के पत्तों की सब्जी सर्दियों में जबकि भाबर की सब्जी गर्मियों में बनाई जाती है । इनके पत्तों को अच्छी तरह से उबालकर इसमें चावल, बेसन या मक्की के आटे को डालकर बनाया जाता है ।

ii. **पापड़ी : -** यह पानी के स्त्रोंतों के आसपास पाई जाती है जो कि अरबी और कचालू के पत्तों के समान होती है तथा अरबी के पत्तों की सब्जी की तरह बनाई जाती है ।

iii. **गुड़यालटी : -** गुरयाल नामक पेड़ के फूल जब खिले नहीं होते और खिलने से पहले ही इसे तोड़ दिया जाता है उसे गुड़यालटी कहा जाता है ।

iv. **फाफरा, बाथू, भथला और बढ़यालटो : -** ये सभी हरी पत्तेदार सब्जियाँ है जो कि गिरिपार क्षेत्र जंगलो व खेतों में पाई जाती है । इनके पत्तों को छोटा-छोटा काटकर सरसों के साग की तरह बनाया जाता है ।

v. **चीचा : -** ये अधिकतर ऊंचाई वाले उन भागो में पाया जाता है जहाँ बान के जंगल पाए जाए है । ये एक प्रकार का जंगली मशरूम होता है जो कि खोखले या सड़े हुए बान के पेड़ में पाया जाता है ।

vi. **चियाऊँ : -** यह पर्वतीय भागों में प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली सबसे बहुमूल्य सब्जी है जिसकी कीमत बाजार में औसतन दस हज़ार रुपये प्रति किलो से भी अधिक होती है । ये सबसे कीमती सब्जियों में से एक है ।

vii. **कुवेड़ु और जंगली सुतौउले : -** ये भी जंगली मशरूम की प्रजाति है जो कि प्राकृतिक रूप से ऊंचाई वाले भू भागों में पाई जाती है । कुवेड़ु मशरूम की तरह ही होता है लेकिन इसका आकार बहुत बड़ा होता है जबकि जंगली सुतौउले गेहूँ के तनों की तरह गुच्छों में लगता है ।

viii. **पुदना, छम्बरीला, अमेड़ा, और तिम्बुर ओडो: -** ये सभी ऐसी प्राकृतिक वनस्पतियाँ है जिनकी पत्तियों व छोटी टहनियों का इस्तेमाल चटनी बनाने के लिए किया जाता है ।

3.6 विविध उपयोग वाली वनस्पतियाँ

सिरमौर जिला का गिरिपार क्षेत्र कई प्रकार की प्राकृतिक वनस्पतियों का भण्डार है । इस भू-भाग में कुछ ऐसी वनस्पतियाँ भी है जिनके कई उपयोग है । इस तरह की वनस्पतियों में केलों, ओखोड़, बियुल, भांग, खड़ीक, कशमल, किमु, दुदाला, थूम्बई, बुरास, निंगाल, बांश, काको, शु ंवालअ आदि प्रमुख है । इन वनस्पतियों को इमारती लकड़ी, पूजा, औषधि, फल, टोकरियाँ बानाने के रूप में स्थानीय लोगों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है ।

i. **केलों : -** केलों (देवदार) को इमारती लकड़ी के रूप में विशेषकर ऊँचाई वाले भागों में सबसे अधिक उपयोग किया जाता है । इसकी लकड़ी को अनुष्ठानों के दौरान हवन में भी पर्वतीय भागों में प्रयोग में लाया जाता है । इस पेड़ से निकलने वाला तेल को पशुओं के शरीर में पैदा होने वाले कीड़े जिन्हें स्थानीय भाषा में पिशु व अठवे कहा जाता है, को मारने के लिए पशुओं के शरीर में मलने से कीड़े नष्ट हो जाते है ।

ii. **बियुल : -** इस पेड़ की छाल को निकालकर इसे किसी डंडे से पीट-पीट कर नर्म किया जाता है । यदि किसी व्यक्ति की हड्डी टूट जाए तो इसकी नर्म छाल टूटी हुई हड्डी के स्थान पर चारों ओर से बांधकर उसके बाहर कपड़ा बांध लेने से हड्डी कुछ दिनों में ही जुड़ जाती है । इसकी टहनियों को काटकर पत्तों को तो पशुओं को खिलाया जाता है लेकिन जो डंडे जिन्हें बियुलाठी कहा जाता है, उनको सुखने के बाद छोटी नदियों में पानी के निचे कुछ दिनों के लिए दबा दिया जाता है, फिर उन्हें पत्थरों पर पीटकर इससे शेल (रेशा) अलग किए जाते है, जिनसे इस क्षेत्र में पागोई (रस्सियाँ) बाने जाती है । इसमें लगने फल को बियुलेलटु कहा जाता है, जो स्वाद में मीठे होते है ।

iii. **ओखोड़ : -** ओखोड़ (अखरोट) इमारती लकड़ी, दातुन और फल के लिए जाना जाता है । इसके पत्तों, छोटी टहनियों और जड़ों को लोग दातुन के लिए इस्तेमाल करते है जबकि इसके फल जिन्हें इस क्षेत्र में ओखोड़ो कहते है, को अपने उपयोग के अतिरिक्त इसका व्यापार भी किया जाता है ।

iv. **भांग : -** इस पौधे की पत्तियों को पूजा और सुखाकर शिवरात्री के दिन दूध में मिलाकर घोटा बानाया जाता है, जिसका सेवन मंदिरों में श्रधालुओं द्वारा किया जाता है । इसके साथ इस पौधे की टहनियां जब सूख जाती है तो उससे शेल निकालकर रस्सियाँ भी बनाई जाती है । इस पौधे से बीज को भूनकर मुड़ा जो कि गेहूँ व चावल के उबले दानों को सुखाकर उनको भूनने के बाद तैयार होता है, में मिलाने से मुड़े का स्वाद बहुत बढ़ जाता है ।

v. **खड़ीक : -** यह एक बहुत ऊँचा पेड़ होता है जिसे इमारती लकड़ी के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा इसके फल को खड़केलटु कहा जाता है जो कि पकने के बाद पीले हो जाते है, जो बहुत ही मीठे होते है ।

vi. **किमु : -** किमु भी एक बहुत ऊँचा पेड़ होता है जिसे इमारती लकड़ी के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा इसके फल को किमोली कहा जाता है जो कि पकने के बाद बैंगनी या भूरे रंग के हो जाते है, जो कि बहुत ही मीठे होते है, जबकि इसकी पत्तियां भी पशुओं के चारे के बहुत अच्छी होती है ।

vii. **कशमल : -** कशमल एक काँटेदार पौधा है जिसके फल खट्टेऔर मीठे होते है । इसकी जड़ को निकाल कर किसी खुरादरे पत्थर में रगड़कर लेप तैयार किया जाता है या इसकी जड़ों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर किसी बर्तन में उबालकर खूब काढ़ा जाता है फिर ठंडा होने दिया जाता है । यदि किसी व्यक्ति के शरीर का कोई भी भाग कट जाता है तो इसका लेप लगाने से कुछ दिनों में ही घाव ठीक हो जाते है ।

viii. **दुदला : -** यह भी एक बहुत ऊँचा पेड़ होता है जिसे इमारती लकड़ी के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा इसके फल को दुदलेलटु कहा जाता है जो कि पकने के बाद बैंगनी रंग के हो जाते है, जो कि बहुत ही मीठे होते है, जबकि इसकी पत्तियां भी पशुओं के चारे के बहुत अच्छी होती है ।

ix. **थूम्बई : -** इस पेड़ को पूजा में भी प्रयोग किया जाता है । इसके डंडे को घर के प्रवेश द्वार पर टांगा जाना शुभ माना जाता है । इसकी टहनियों को उधेड़कर पतले-पतले भागों में बांटा जाता है जिसे घिला (किलटा) और शेकड़े (टोकरियाँ) बनाने में प्रयोग किया जाता है । इसके फल जो कि पकने पर गुलाबी और पीले हो जाते है, मीठे होते है ।

x. **बुरास : -** बुरास गिरिपार के ऊँचाई वाले भागों में पाया जाता है । वर्तमान समय में इसके फूल का जूस और चटनी स्थानीय लोगों द्वारा भी बनाई जाती है । परम्परगत रूप से इसके फूलों की माला रस्सी में बनाकर मंदिरों के चारों तरफ सजाने का प्रचलन भी है ।

xi. **निंगाल , बांश और काको : -** इन वनस्पतियों की उंचाई बहुत ज्यादा होती है । गिरिपार क्षेत्र में ये सभी घिला (किलटा), शेकड़े, डाले (रोटियां रखने के काम), ओलले (टोकरियाँ) आदि बनाए जाते हैं । बांश और काको को घरों के निर्माण में उपयोग में लाया जाता है ।

xii. **कुंवारपाटा या कुंवारपाच (एलोवेरा): -** इस क्षेत्र में इसकी छाल को राख के साथ मिलाकर एक टूटा हुआ बर्तन जिसके तल में छेद होते है जिसे स्थानीय भाषा में छुआना कहा जाता है, में डाला जाता है । छुआने को किसी बर्तन के ऊपर रखा जाता है । छुआने में थोड़ा-थोड़ा पानी डाला जाता है जो धीरे-धीरे निचे रिसता है, जिसका रंग गहरा भूरा होता है जिसे छुई कहा जाता है । इस पानी को कपड़े धोने के लिए इस्तेमाल किया जाता है । इसके अतिरिक्त इससे निकलने वाले रेशों से रस्सियाँ भी बनाई जाती है ।

4. गिरिपार क्षेत्र की कृषि व बागवानी सम्बन्धी वनस्पतियाँ

गिरिपार क्षेत्र प्राकृतिक वन सम्पदा का तो अपार भण्डार है लेकिन विज्ञान और प्रोद्योगिकी के इस युग में जिस प्रकार से उन्नति कर रहा है उसका प्रभाव इस क्षेत्र पर भी देखने को मिल रहा है । प्राकृतिक वनस्पतियों के साथ-साथ आज इस क्षेत्र के लोगों का रुझान कृषि और बागवानी की तरफ भी बहुत बढ़ रहा है । कृषि में खाद्यान, दालें, सब्जियाँ, तिलहन तथा बागवानी वनस्पतियाँ उगाई जा रही है जो कि इस क्षेत्र के लोगों की मौलिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में अहम भूमिका अदा कर रही है ।

4.1 खाद्यान फसलें

इस क्षेत्र में खाद्यान जैसे गिहूँ, जौ, धान, कुकड़ी, कुदोअ, चउलाई, शांवक, चिणोई, कावणी, ओगला आदि का उत्पादन किया जाता है । इनका उत्पादन अधिकतर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही होता है । बहुत कम मात्र में गिहूँ, जौ, धान, कुकड़ी और चउलाई का व्यापार होता है ।

i. **गिहूँ और जौ : -** गिहूँ (गेहूँ)और जौ के आटे की रोटियाँ बनाई जाती है । इसके अतिरिक्त इनका उपयोग पूजा में भी किया जाता है, विशेषकर जौ को इस क्षेत्र में पूजा के लिए सबसे अधिक पवित्र अन्न माना जाता है ।

ii. **कुकड़ी : -** इस क्षेत्र में कुकड़ी (मक्की) पीली और सफेद दो प्रकार पाई जाती है । इसके आटे की भी रोटियाँ बनाई जाती है । कुकड़ी को भूनकर और उबालने के पश्चात सुखाकर इसे घटो (घराट) में पिसाकर सातु तैयार किए जाते है जिसे शाश (लस्सी) में धोलकर गुड़ या चटनी के साथ खाया जाना गिरिपार क्षेत्र की विशेष पहचान है । इसके अतिरिक्त इसके आटे से यहाँ के लोग कढ़ी भी बनाते है ।

iii. **कुदोअ : -** कुदोअ (मंडवा) का आटा बहुत ही गुणकारी है । इसमें प्रोटीन, रेशा, वासा और कार्बोहाइड्रेट की मात्रा अधिक होने के कारण एमोनिया, डायबिटीज आदि रोगों से ग्रसित लोग इसकी रोटियाँ खाते है । इस क्षेत्र के लोग अधिकतर सर्दियों में इसकी रोटियाँ खाते है । गिरिपार क्षेत्र के काफी हिस्सों में इसकी ढिंढकी और सुतौउले या शुचौउले जैसे परम्परागत व्यंजन बनाकर खाते है ।

iv. **धान : -** इस क्षेत्र में धान की खेती अधिकतर जल स्त्रोतों के नजदीक सीढ़ीनुमा खेतों में की जाती है । विशेष रूप से लाल चावल यहाँ के धान से निकलता है जिसका दाना काफी मोटा होता है । यहाँ के लोगों द्वारा चावल पतीलों में पकाया जाता है जिससे कि चावल के पकने के बाद जो पानी बचता है, उसमें नमक मिलाकर पीया जाता है । स्थानीय भाषा में चावल के इस पानी को पीछ (माड़) कहा जाता है ।

v. **शांवक : -** इसका प्रचलन अब काफी काम हो चुका है फिर भी इसे चउलाई और कुदोअ के साथ मिलाकर इसकी रोटियाँ बनाने का प्रचलन है तथा इसकी खीर भी बनाई जाती थी ।

vi. **चउलाई : -** चउलाई (चौलाई) को कुदोअ के साथ मिलाकर आटा बनाया जाता है । इसको भूनने के बाद इसमें गुड़ मिलाकर लडडू बनाने के साथ-साथ इसकी खीर भी इस क्षेत्र में बनाई जाती है । भूनने के बाद इसमें भांग के दाने मिलाकर इसे स्थानीय व्यंजन मुड़े के रूप में भी खाया जाता है ।

vii. **चिणोई और कावणी : -** इनकी खीर बानाई जाती है तथा भूनने के बाद इनमें भी भांग के दाने मिलाकर मुड़े के रूप में भी खाया जाता है ।

viii. **ओगला : -** इसके आटे में गुड़ मिलाकर इसे पतला गूंथकर इसके चिलटू या गुलगुले बनाए जाते है ।

4.2 **दालें : -** इस क्षेत्र में कृषि में उगाई जाने वाली दालों में बालड़ी, राजमा, लोबिया, माशो, भट्टो, रांगुणो, मुसरो, कुल्थो आदि प्रमुख है । अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने पर इनका व्यापार भी लोग करने लगे है ।

i. **बालड़ी, राजमा और लोबिया : -** ये इस क्षेत्र की प्रमुख दालों के शामिल है । बालड़ी के दाने छोटे होते है जो रंग में काले और सफेद होते है । राजमा के दाने बालड़ी से बड़े और लोबिया के दाने इनमें सबसे बड़े होते है ।

ii. **माशो : -** माशो (उड़द) को माश भी कहा जाता है जिसकी दाल बनाई ही जाती है । इस क्षेत्र में माशो के दानों को भीगोकर इसे शील ऊपर पीसा जाता है । पीसने के बाद जब ये बारीक हो जाता है तो इसे स्थानीय भाषा में मेशण कहते है जिसे इस क्षेत्र के पारम्पारिक व्यंजन सिड़ो (सिड़कु) और तेलपाकी बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है ।

iii. **भट्टो: -** भट्टो (सोयाबीन) को डाल के रूप में तथा इसके दानों को पीसकर इसका भी मेशण बनाकर सिड़ो (सिड़कु) और तेलपाकी बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है ।

iv. **रांगुणो, मुसरो और कुल्थो : -** रांगुणो (रोंगी) को डाल और खिचड़ी में तथा मुसरो (मसूर) और कुल्थो (कुलथी) को डाल के रूप में प्रयोग किया जाता है । कुल्थो को इस क्षेत्र में अकसर गागवी (अरबी) के साथ बनाया जाता है ।

4.3 तिलहन फसलें : - तिलहन फसलों में शेरोंअ, राई, तीलो, सूरजमुखी, भंगजीरो आदि वनस्पतियाँ इस क्षेत्र में मुख्य रूप से पाई जाती है । ये ऐसी फसलें है जो लोगों की आवश्यकताओं को तो पूरा कर ही रही है बल्कि वर्तमान समय में उनके आय के साधन भी बन रही है ।

i. **शेरोंअ, तोड़िया और राई :** - शेरोंअ (सरसों), तोड़िया और राई के दानों से तेल निकाला जाता है तथा तेल निकालने के बाद जो अवशेष बचता है उसे खल कहा जाता है जिसे दुधारू पशुओं को अनाज में मिलाकर खिलाया जाता है । इनके पत्तों का शाग (साग) बनाया जाता है जिसे लोग कुकड़ी की रोटी के साथ खाते है ।

ii. **तीलो, सूरजमुखी व भंगजीरो : -** इन फसलों के दानों से भी तेल निकाला जाता है जिसे लोग अपनी वभिन्न आवश्यकताओं में उपयोग करते है । इसके अतिरिक्त इनके दानों को भूनने के बाद पीसा जाता है जिसका मेशण बनाकर इसे भी सिड़ो (सिड़कु) और तेलपाकी बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है ।

4.4 उगाई जाने वाली सब्जियाँ : - गिरिपार क्षेत्र में उगाई जाने वाली सब्जियों में फूल गोभी, पत्ता गोभी, आलू, मटरो, टमाटरो (टमाटर), मूली, गाजर, बीन, बतीया (बैंगन), तोरोई, चाचरेंडे, प्याजो (प्याज), लहसणो (लहसुन), कददू, मीठा करेला, कड़वा करेला, गागवी (अरबी), कुचवली (कचालू), शिमला मिर्च, धणिया (धनिया) आदि प्रमुख है । इस क्षेत्र की आय में टमाटरो, लहसणो, फूल गोभी, पत्ता गोभी, आलू, मटरो का व्यापक रूप से व्यापार किया जाता है जिससे लोगों की आय में बहुत वृद्धि हुई है जबकि अन्य सब्जियाँ जैसे प्याजो, मूली, गागवी (अरबी), कुचवली (काचालू), शिमला मिर्च, धणिया आदि का भी व्यापारिक महत्त्व है ।

4.5 बागवानी और फलदार फसलें : -

बागवानी और फलदार फसलों में सेव (सेब), आम, आड़ू, चुलुवों, पालमों, आरुवों, किवी, नाशपाती, निम्बू, अमरूद, पपीता आदि वनस्पतियाँ उगाई जा रही है जो कि इस क्षेत्र के लोगों की आर्थिक स्थिति करने में अहम भूमिका अदा कर रही है । सेव की बागवानी शिलाई, गत्ताधार, पंजोड़धार, हरिपुरधार, नोहराधार, संगड़ाह आदि क्षेत्रों में हो रही है जबकि आम के बगीचे गिरी नदी के आसपास के क्षेत्रों में देखने को मिलते है । शिलाई के कुछ भागों में किवी की बाहावानी भी की जा रही है जबकि निम्बू तो गिरिपार के बहुत क्षेत्रों में देखने में मिला है । आड़ू वैसे तो गिरिपार के ऊँचाई वाले भागों में काफी होता है लेकिन राजगढ़ क्षेत्र की प्रमुख व्यापारिक फसल आड़ू है । इसी कारण राजगढ़ को आड़ू की घाटी कहा जाता है ।

4.6 औषधिदायी फसलें : -

औषधि प्रदान करने वाली फसलों में आदरो, शूंठ, कचूर, कालीजिरी, हलीज आदि है । ये औषधि के रूप में तो प्रयोग होती ही है बल्कि इस क्षेत्र में ये का भी एक मुख्य साधन है ।

i. **आदरो और शूंठ : -** आदरो (अदरख) और शूंठ (सोंठ) भी इस भू-भाग में औषधि व खाने पीने की सामग्री में उपयोग किया हाता है । इसका काढ़ा पीने से सिरदर्द से राहत मिलती है । यह चाय और सब्जियों में किया जाता है प्रयोग होता है । शूंठ तो अदरक से ही बनाई जाती है जो शिलाई क्षेत्र में काफी होती है । ये फसलें इस क्षेत्र की आय का सबसे प्रमुख साधन है । अदरख गिरिपार के बहुत क्षेत्रों में उगाया जाता है ।

ii. **हलीज :** - हलीज (हल्दी) का प्रयोग इस क्षेत्र के लोग सब्जी में तो करते ही है लेकिन यदि किसी व्यक्ति को अंदरूनी चोट आये हो तो उसको दूध में इसे मिलकर भी पिलाया जाता है ।

iii. **कचूर:** - ये बहुत गुणकारी होता है जिसका काढ़ा पीने से सिरदर्द और पेटदर्द ठीक हो जाता है । सिरदर्द और पेटदर्द होने पर इसे चुल्हे की आग में भूनकर गुड़ के साथ खाने से भी राहत मिलती है ।

iv. **कालीजिरी : -** ये ऐसा पौधा होता है जिसमें जीरे के जैसा बीज लगता है जो की बहुत ही कड़वा होता है जिसे पशुओं को पानी में मिलाकर पिलाने से पशुओं में निकाला नामक बिमारी समाप्त हो जाती है । यह भी इस क्षेत्र की व्यापरिक फसलों में आती है

5. **निष्कर्ष : -** हिमाचल प्रदेश का गिरिपार क्षेत्र प्राकृतिक सुंदरता और सांस्कृतिक विविधताओं के लिए प्रसिद्ध है, जो कि जनजातीय पहचान और पारिस्थितिक समृद्धि का सूचक है । इस क्षेत्र की भौगोलिक कठिनाइयाँ इसे विशेष बनाती हैं, जबकि यहाँ की प्राकृतिक वनस्पतियाँ और पारंपरिक ज्ञान जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं । गिरिपार क्षेत्र के लोग धार्मिक, सांस्कृतिक, औषधीय, और दैनिक आवश्यकताओं के लिए वनस्पतियों का सतत उपयोग करते हैं । देवीय कार्यों में उपयोग की जाने वाली वनस्पतियाँ जैसे केला, पीपल, बेलपत्र, बड़, भैकों, जूब, कांश, छाम्बर, ढाक, गूलर, पाजा, आदि पूजा-अनुष्ठानों का हिस्सा हैं । औषधीय पौधों जैसे बेनक्सा, बिराल ढ़ांगर या बिरालई को झाल, छिछरोली, कड़ु, बुशोंटी, तिम्बुर, भाउकुम्ब, नोना, पटकिरा, गानी, कोड़ुअण, कचूर, आदरो, हड़सील ने पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में अपनी जगह बनाई है । इमारती लकड़ियाँ और कृषि उपकरण निर्माण में केलों, रोइ, चीअ, सपेदा, बान, मोइरू, तून, ओखोड़, खईर, शीशम, शिंगीर, छानण, शिमोल, किमु आदि वनस्पतियों का प्रयोग किया जाता है जो कि इस क्षेत्र के निवासियों के जीवन को आत्मनिर्भर और पर्यावरण-अनुकूल बनाता है । विकास के युग में इस क्षेत्र के लोगों का ध्यान कृषि व बागवानी की तरफ अधिक जा रहा है । खाद्यान जैसे गिहूँ, जौ, धान, कुकड़ी, कुदोअ आदि, दालों में बालड़ी, राजमा, लोबिया, माशो, भट्टो, रांगुणो, मुसरो, कुल्थो तथा तिलहन फसलों में शेरोंअ, राई, तीलो, सूरजमुखी, भंगजीरो आदि इस

क्षेत्र की पहचान है । बागवानी और फलदार फसलों में सेव, आम, आड़ू, किवी, नाशपाती, निम्बू आदि के साथ-साथ टमाटरो, लहसणो, फूल गोभी, पत्ता गोभी, आलू, मटरो आदि इस क्षेत्र की आय का मुख्य साधन ही नहीं है बल्कि इनके उत्पादन से लोगों की आय में बहुत वृद्धि हुई है । यह क्षेत्र अपने पारंपरिक ज्ञान और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना को सहेजकर रखता है। आधुनिक युग में भी, गिरिपार के लोग पारिस्थितिकी से जुड़े अपने अनुभवों और संसाधनों को संरक्षित करते हुए, आत्मनिर्भर जीवनशैली के अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस शोध ने यह प्रमाणित किया है कि प्राकृतिक संसाधनों के प्रति स्थानीय समुदाय की समझ और पारंपरिक उपयोग, न केवल सांस्कृतिक धरोहर को बचाए रखने में सहायक हैं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण की दिशा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

सिरमौर के गिरिपार क्षेत्र में पाई जाने वाली प्राकृतिक वनस्पतियाँ

देव कार्यों में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ	इमारत, कृषि उपकरणों में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ	औषधि के रूप में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ	फल देने वाली वनस्पतियाँ	सब्जियाँ और चटनी में प्रयोग होने वाली वनस्पतियाँ	विविध उपयोग वाली वनस्पतियाँ
पीपल	केलों	बेनक्सा	तिरमल	कुकुआ	केलों
बेलपत्र	रोइ	बिरालई को झाल	काफल	भाबर	ओखोड़
बड़	चीअ	छिछरोली	चइतरो	पापड़ी	बियुल
भैकों	सपेदा	कड़ु	छलीक	गुड़यालटी	भांग
जूब	बान	बुशोंटी	बिजोरी	फाफरा	खड़ीक
कांश	मोइरू	तिम्बुर	जाम्बुर	बाथू	कशमल
छाम्बर	तून	भाउकुम्ब	डान्डुं	भथला	किमु

ढाक	ओखोड़	नोना	आछुओं	बढ़यालटो	दुदाला
गूलर	खईर	पटकिरा	कलाच्छुवों	चीचा	थूम्बई
आंक	शीशम	गानी	फेगुड़ा	चियाऊँ	बुरास
पाजा	शिंगीर	कोड्डअण	सिंयार	कुवेड़ु	निंगाल
कथुचाड़	छाणण	कचूर	भुम्बल	जंगली सुतौउले	बांश
जामुन	शिमोल	आदरो		पुदना	काको
भु	भदल	अम्बर बेल		छम्बरीला	शु◌ंवालअ
भोजपत्र	खड़ीक	शु◌ंवालअ		अमेड़ा	
शामी	किमु	हड़सील		तिम्बुर	
बुराड़ोई	कऊ	ऐड़		ओडो	
	रेहूश	ढेडणा			
		शातारो			
		बनकुपड़ु			
		बुठावा			
		फूमा			
		पियोणी			
		डुमतोली			
		कौवा ओखोड़			

सिरमौर के गिरिपार क्षेत्र के खेतों और बगीचों में उगाई जाने वाली वनस्पतियाँ

खाद्यान	दालें	तिलहन वनस्पतियाँ	फलदायी वनस्पतियाँ	सब्जियाँ वाली वनस्पतियाँ	औषधिदायी वनस्पतियाँ
गिऊँ	बालड़ी	शेरोंअ	सेव	लहसण	आदरो
जौ	राजमा	राई	आम	प्याज	कचूर
धान	लोबिया	तोड़िया	आड़ू	फूलगोभी	हलीज
कुकड़ी	माशो	तीलो	चूलूवों	पत्तागोभी	शूंठ
कुदोअ	भट्टो	भंगजीरो	पालमों	टमाटर	कालीजीरी
शा◌ंवक	रांगुणों	सूरजमुखी	आरुवों	मटर	
कावणी	मुसरो		पपीता	आलु	
चउलाई	कुलथो		नाशपाती	मूली	
चिणोई			किनु	गाजर	
ओगला			निम्बू	बीन	
			आंगुर	बतिया	

अमरूद	**तोरोई**
कीवी	**चचरेंड़ा**
	तुंबड़े
	गागवी
	कुचावली
	कोदद्रू
	मीठा करेला
	कड़ुवा करेला
	शिमला मिर्च
	पीपली
	धणिया

6. संदर्भ : -

1. श्री लायक राम भारद्वाज, उम्र 61 वर्ष, गाँव व डाकघर भलौना, उप-तहसील हरिपुरधार, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 15 सितम्बर 2024
2. श्री हीरा पाल, उम्र 70 वर्ष, गाँव व डाकघर भलौना, उप-तहसील हरिपुरधार, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 15 सितम्बर 2024
3. श्रीमति मेहंदी देवी, उम्र 67 वर्ष, गाँव व डाकघर भलौना, उप-तहसील हरिपुरधार, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 15 सितम्बर 2024
4. श्री जीत राम, उम्र 78 वर्ष, गाँव व डाकघर भलौना, उप-तहसील हरिपुरधार, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 15 सितम्बर 2024
5. श्री सुन्दर सिंह, उम्र 83 वर्ष, गाँव कुणा, डाकघर बड़ोल, उप-तहसील हरिपुरधार, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 17 अक्तूबर 2024
6. श्री आत्मा राम, उम्र 56 वर्ष, गाँव व डाकघर रजाणा, तहसील संगड़ाह, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 30 अक्तूबर 2024

7. श्री कुन्दन सिंह शास्त्री, उम्र 63 वर्ष, गाँव व डाकघर शरली मानपुर, उप-तहसील कमराऊ, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 2 नवम्बर 2024
8. श्री शिव राम, उम्र 86 वर्ष, गाँव बिन्डला, डाकघर मिल्लाह, तहसील शिलाई, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 2 नवम्बर 2024
9. श्री बस्ती राम, उम्र 74 वर्ष, गाँव बिन्डला, डाकघर मिल्लाह, तहसील शिलाई, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 2 नवम्बर 2024
10. श्री बली राम शर्मा, उम्र 66 वर्ष, गाँव व डाकघर मिल्लाह, तहसील शिलाई, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 2 नवम्बर 2024
11. श्री चेत राम, उम्र 74 वर्ष, गाँव, डाकघर व उप-तहसील रोहनाट, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि 3 नवम्बर 2024
12. श्रीमति गीता देवी, उम्र 61 वर्ष, गाँव, डाकघर व उप-तहसील रोहनाट, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 3 वम्बर 2024
13. श्री अमर सिंह, उम्र 76 वर्ष, गाँव बोराड़, डाकघर कोटी बोंच, उप-तहसील रोहनाट, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 3 नवम्बर 2024
14. श्री जय प्रकाश चौहान, उम्र 75 वर्ष, गाँव व डाकघर हाब्बन, तहसील राजगढ़, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 15 नवम्बर 2024
15. श्रीमति शकुंतला प्रकाश चौहान, उम्र 69 वर्ष, गाँव व डाकघर हाब्बन, तहसील राजगढ़, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 15 नवम्बर 2024
16. श्री शेर जंग चौहान, उम्र 72 वर्ष, गाँव व डाकघर हाब्बन, तहसील राजगढ़, जिला सिरमौर (हि.प्र.), साक्षात्कार तिथि : 15 नवम्बर 2024

हाटी जनजाति की समृद्ध खाद्य परम्परा

अनीता ठाकुर (प्रकाशित शोध पत्र)

गिरिपार सिरमौर के हाटियों की संस्कृति आनन्द और खान पान की संस्कृति रही है I वर्ष भर विभिन्न प्रकार के व्यंजन, पकवान व पेय का आनंद लेते हैं और ये ख्व्य व पेय परम्परा का मुख्य आधार यहाँ की बिषम व कठोर भौगोलिक संरचना के अतिरिक्त उपलब्ध प्राकृतिक स्त्रोत व संसाधन रहे हैं I यहाँ की खाद्य व्यवस्था जितनी ही परम्परागत है उससे कहीं अधिक वैज्ञानिक और स्वास्थ्य वर्धक रही है I अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में वर्ष भर चलने वाली लम्बे शीत ऋतु ने खाद्य व्यवस्था के निर्धारण में अहम् भूमिका निभाई है वहीं कम ऊँचाई वाले भागों में थोड़ी अलग प्रकार की खाद्य प्रणाली प्रचलित रही हैं I यहाँ की प्राकृतिक प्रविधियों द्वारा वर्ष भर के लिए खाद्य पर्दार्थों और पेय पदार्थों को संरक्षित करने का वैज्ञानिक ढंग सहस्त्राब्दियों से प्रचलित रहा है I कुछ खाद्य पदार्थ जैसे सातु आदि को तो वर्ष भर के लिए एक बार ही पका कर रख लिया जाता है और आवश्यकता नुसार उपयोग किया जाता है I यहाँ कभी प्रचलित रही अनाज की सूर किसी सोमरस से कम नहीं मानी जाती थी I भातियोज़ के दिन काटे

गए बकरे या खाडू का मास धुएँ में सुखाकर वर्ष भर के उपयोग हेतु रखने की परम्परा आज भी प्रचलित है। चुल्लू से बने चुलोउले को मसाले या चटनी के रूप में वर्ष भर के उपयोग हेतु रखा जाता है। इस समुदाय में प्राकृत रूप से उपलब्ध निधियों को यथासंभव प्रयोग किया जाता रहा है और सदैव प्रकृति के साथ संतुलित सामजस्यता स्थापित करते रहे है। यहाँ की सामान्य भोजन व्यवस्था, परम्परागत व्यंजन व पेय प्रकृति से प्रेरित रहे है जिसमें शतप्रतिशत शुद्धता प्रमाणिक है। खेतो में उत्पादित शुद्ध जैविक खाद्य सामग्री का लकड़ी के ईंधन से चूल्हे में पकाया भोजन हमेशा सुपाचय व स्वास्थ्यवर्धक होता है।

गिरिपार सिरमौर के हाटियों की परम्परागत भोजन, व्यंजन व पेय व्यवस्था को अधिक गहनता से समझने और पाठकों की सुविधा के लिए इसे निम्न श्रेणीयों में विभक्त किया जा रहा है:

क. सामान्य दिनचर्या का भोजन

ख. परम्परागत व्यंजन व पकवान

ग. वर्ष भर के लिए एक बार प्रसंसाधित खाद्य पदार्थ

सामान्य रूप से हाटियों में सुबह का नाश्ता करने का कम प्रचलन रहा है। भोर के साथ काम पर जाने वाले हाटी शाम की बची हुई बासी मक्की की रोटी चटनी, मक्खन या चटपटे मसाले के साथ खाने का रिवाज़ रहा है जिसे **चैएले** कहते हैं। जब अंग्रेजी चाय का प्रचलन बढ़ा तो यहाँ गुड़ की चाय कभी कभार प्रयोग की जाती रही लेकिन अब सामान्य चाय का उपयोग होता है। नौ दस बजे किये जाने वाले सामूहिक भोजन को **दुपारी** कहते हैं अर्थात दो पहर बीत जाने के बाद किया जाने वाला भोजन। अपराह्न के समय किया जाने वाला आहार केवल सातु का होता है और यह केवल उस स्थिति में खाया जाता है जब या तो दिन बड़े हों या फिर कोई भारी शारीरिक कार्य करने के उपरान्त तुरंत भूख मिटाने की जरूरत महसूस हो रही हो। शाम को आठ बजे के आस-पास रात्रि भोजन किया जाता है जिसे **बिआले** कहते है। भोजन को कांसे की थाली में परोसना उत्तम माना जाता है और अतिथियों को अकसर इन्ही थालियों में भोजन परोसने की परम्परा रही है। रात्रि भोजन से पूर्व गर्म पानी से हाथ-पाँव धुलाने का भी रिवाज़ रहा है यद्यपि अब नई पीढ़ियों में इसका प्रचलन काफी कम हो चुका है। **ताइये लाणा, हथारा लाणा, माशअ भिअणा, भोडू ठारणा, बाटुआ तपणा, मेशणी, अलणे, शोद्दे, खरियाले, मसराणियों** ऐसे प्रतीकात्मक शब्द हैं जिसका प्रयोग केवल खास अवसरों पर बनाए जाने वाले खाद्यों को इंगित करने के लिए किया जाता है। ये हाटी बोली के प्रचलित शब्द विशेष अवसरों पर बनाए जाने वाले पकवानों और ब्यंजनों को व्यक्त करते हैं। ताइये लाणा इंगित करता है कि तेल में पकाई जाने वाली माश की रोटी जो कम से कम दिवाली के दिन हर घर में बनती ही है। हथारा लाणा से अभिप्राय है भाप में पकाए जाने वाले सिडकू बनाना जिसके पकाने के लिए वर्तन के तले में कांश का आधार लगाना जिस पर सिडकू रखे जाते हैं ताकि पानी में न डूबे। माशअ भिअणा का अर्थ है किसी के सम्मान में भोज के लिए अच्छा पकवान विशेषत: मेशण के रूप में माशसे बनी रोटियां। भोडू ठारणा संकेत करता है अतिथि के सम्मान में बकरे या खाडू का मीट पकाना। बाटुआ तपणा का मतलब बने हुई खाद्य के साथ घी की धार देना। किसी प्रकार की स्टाफिंग की गयी रोटी मेशणी कहलाती है और सामान्य रोटी से ज्यादा मोटी और पौष्टिक मानी जाती है। अलणा मतलब न नमकीन , न खट्टा और न ही मीठा।

खजरियाले का अर्थ है नमकीन और मसराणियों का आशय होता है आमीष भोजन या मसाहरी भोजन I खत्री शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है जो केवल शाकाहारी भोजन करता है I

क. सामान्य दिनचर्या के खाद्य पदार्थ

गिरिपार के हाटियों में सामान्य रूप से दैनिक उपभोग की खाद्य व पेय परम्परा जलवायु और मौसम आधारित है और इसके अनुसार ही इनका सेवन होता है I मोटे अनाज, दलहन, तिलहन और हरी पत्तेदार सब्जियों के अतिरिक्त घर में उत्पादित लस्सी, दूध, दही का आम तौर पर ज्यादा उपयोग होता है Iसर्दियों की मौसम में मक्की, कोदा, चौलाई का अधिक सेवन होता है जबकि गर्म मौसम में रालियाजी रोटी (मिस्सी) का उपभोग किया जाता है I सम्पूर्ण गिरिपार में गेंहू का कम ही उपयोग होता रहा चूँकि यहाँ गेंहू की पैदावार कम ही होती है I कावनी, शांओक, चिनोई का भात का काफी उपयोग करते रहें लेकिन इन बारीक अनाजों को अकाल का अनाज माना जाता है और तभी उपयोग में लाया जात है जब मक्की, कोदा और चौलाई की कमी महसूस होती थी I धान का भी कम ही उत्पादन होता है इसलिए भात केवल अतिथि के आगमन या विशेष अवसरों पर ही बनता था I सामान्य स्थिति में एक ही दाल या सब्जी एक वक्त के भोजन के लिए बनाई जाती हैं और शाम का बचा भोजन सुबह की चैली में सहर्ष खाया जाता है I मक्की की रोटी और माश, मसूर, लोबिया, रोंगी, भोट आदि की दाल का सर्दियों में सेवन होता है और ठेठ समय की बात करें तो दाल कांसे या पीतल की भोडू में पकाने की बाद मात्र एक कड़छी में घी लेकर जलते चूल्हे की अंगारों पर रखकर उसमे धनिया, जीरा, मिर्च और मैथी मिलकर काफी देर तक पकाया जाता था और तैयार होने पर उस कड़छी से ही भोडू में छौंका लगाया जाता था और वहां मौजूद सदस्यों की खांसी की आवाजें और खुशबू पूरे पडौस में महकती थी I सभी घरों में लस्से बनाते समय सुबह के वक्त मक्खन अलग से तुड़के हेतु रखा जाता था जिसका स्थान अब धारा व सोयाबीन की तेल ने ले लिया है I यहाँ भोजन के साथ लस्सी को पेय हेतु हमेशा पसंद किया जाता है चाहे दुपारी हो या बियाली I यहाँ घी का सेवन वर्ष भर खूब होता है और अक्सर परम्परागत पकवान और व्यंजन केवल घी की साथ ही खाए जाते हैं I दही या छा ज्यादातर सुबह के भोजन के साथ प्रयोग की जाती है I सामान्य दैनिक भोजन व पेय का विवरण इस प्रकार हैं :

1. **रोटीयां**: पानी के घराट का पीसा मक्की का आटा सबसे ज्यादा उपयोग किया जाने वाला आटा है जिसे हल्का गूंथ कर पानी से गीले हाथ से गर्म तवे पर पकाई जाती है और चूल्हे में पड़े अंगारों पर सैकी जाती है I मक्की की गर्म गर्म रोटियां खाने का अपना अलग ही आनन्द है I गेंहूं के आटे के साथ मक्की के आटे को मिश्रित करने पर रालियाजी रोटी भी बनाई जाती है जिसे गीले हाथ की अपेक्षा सूखे हाथ से बनाया जाता है I कोदा का आटा भी रोटी के रूप में उपयोग किया जाता है और इसमें मक्की तथा गैंहूँ के आटे का मिश्रण करने पर इसे पाचन दृष्टि से अधिक सुपाचय बनाया जाता है I कड़ाके की ठण्ड में चौलाई और कोदो के आटे की बनी रोटियां सर्वाधिक पौष्टिक व मौसमानुकूल होती है I जौ की रोटियां भी बनाई जाती है जिसमें रेशा अत्यधिक मात्रा में होता है और खाने में कम स्वादिष्ट होने के कारण इसका कम ही उपयोग केवल अनाज की कमी की वक्त किए जाता रहा I जौ के आटे को गेंहूं, कोदा और चौलाई के आटे की साथ मिश्रित करके बनाई जाने वाली रोटियां ज्यादा सुपाचय व स्वादिष्ट बनती है I गेंहू की

रोटियाँ तो आज से ३० वर्ष पहले केवल विशिष्ट अवसरों पर ही बनाई जाती थी चूँकि यहाँ गेंहू का उत्पादन बहुत कम होता हैं I

2. **बेड़ोली**: गेंहू के आटे को अधिक मात्रा में मक्की के आटे की साथ मिश्रित करके तवे पर मोटी पकाई जानी वाली रोटी जिसमें मेशण भरा होता है बेड़ोली कही जाती हैं I इसमें भांग के दाने, भंगजीरा, भौट या फिर गेंहू की आटे को तवे या फिर कढ़ाई में भुनकर मेषण स्वरुप रेगोली में भरा जाता है और फिर तवे पर पकाने के पश्चात् चल्हे में पड़े अंगारों पर सैकी जाती है और इसे अक्सर चटनी या प्याज या आलू , चुल्लू के मबे मसाले की साथ खाई जाती है और दही या लस्सी का भरपूर सेवन इसके साथ किया जाता है I कभी-कभार गुड या शक्कर को भी इसमें मेषण के साथ प्रयुक्त किया जाता है और इसे **मीठी बेड़ोली या गुड़ोली** का नाम दिया जाता है I कोदा और थोड़ी मात्रा में गेंहू का आटा मिश्रित करके और उसमे उबली गगटी का मेशण डालकर भी बेड़ोली बनाई जाती हैं I मांधी के त्यौहार के समय काटे गए बकरे की चर्बी के छोटे-छोटे टुकडे करकेमेषणके साथ मिलाकर रोटी के अन्दर डाली जाती है और बहुत स्वादिष्ट बेड़ोली बनाई जाती है। इस प्रकार की मोटी बेड़ोली की विशेषता यह है कि इन्हें केवल तवे पर ही पकाया जाता है जबकि ज्यादातर मोटी रोटियां भाप में पकाई जाती है I

3. **दालें:** गिरिपार के हाटियों में माश की दाल का सबसे ज्यादा प्रचलन है और वर्ष भर इसे खाया जाता है I माश के सेवन का यहाँ प्रचलन कई रूपों में रहा है जिसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जब लड़का-लड़की का विवाह तय होता है तो सगाई के समय संबंध पक्का करने के उद्देश्य से की जाने वाली आतिथ्य यात्राओं को :माशअ खाणअ" से अभिहित किया जाने का प्रचलन रहा है I मेशण के लिए चाहे उलौउले हों या सिडकू हों तथा होलू तथा बड़ियाँ बनाने की बात हो माश का ही उपयोग किया जाता है Iभौट की दाल ज्यातर सर्दियों में खाई जाती हैं और भुने हुए भौट पीसकर बेड़ोली रोटी में मेषण के साथ प्रयोग किया जाता है जिसमें कभी-कभार भांग की दाने और भंग्जीरा भी उपयोग किया जाता है I लोबिया, रांगी, शुन्ठे, की दालों को माश की दाल के साथ मिश्रित रूप में पकाया जाता हैं इन्हें नीरे रूप में कम ही प्रयोग किया जाता है I मसूर की दाल का गर्मियों में कम सेवन इसलिए किया जाता है क्योंकी इसे काफी गर्म तासीर का माना जाता है I कुल्थी का उपयोग केवल सर्दियों में ही किया जाता है और वह भी गागटी और कुचाऊली के साथ अधिक लाभदायक और स्वादिष्ट माना जाता है तथा सुपाचय भी I कुल्थी को अधिकतर माश या लोबिया के साथ ही पकाया जाता है I गगटी और कुचालू की साथ कुल्थी की दाल सर्दियों का उत्तम खाद्य माना जाता है I

4. **साग:** हरे पत्तेदार औषधीय पौधों और वनस्पतियों का उपयोग हाटी जन समुदाय साग के रूप में शताब्दियों से प्रयोग करता आ रहा हैं जिसमें बाथू, लिंगुड, कचनार, तीरमल, बडियालो, तुम्बोटू, लहसुन, प्याज आदि उल्लेखनीय है जिन्हें प्राकृतिक रूप से यहाँ बारह मास उपयोग किया जाता है I इसके अलावा राई, मैथी, मूली के पत्ते, शिन्गरे, सरसों के पत्ते को भी साग के लिए हमेशा प्रयुक्त किया जाता है जिसे मक्की की रोटी के साथ खाना ज्यादा पसंद किया जाता है I साग की विशेषता यह है कि इसें केवल हरी वनस्पतियों से ही बनाया जाता है और गर्मागर्म रोटियों

तथा लस्सी के साथ खजय जाता है I कुकुवा भी याहं साग के रूप में सदियों से प्रयुक्त किया जा रहा है जिसे चावल या फिर मक्की के आटे की साथ पकाया जाता है और इसमे छौंक लगाने की भी जरूरत नहीं रहती है इसे केवल कड़ाके की सर्दी की समय ही खाया जाता है क्योंकि इसकी तासीर काफी गर्म होती है और इसे अधिकतर मक्की की रोटी के साथ ही खाया जाता है I

5. **सब्जियां:** प्राकृतिक रूप से मिलने वाली सब्जियों में कच्चा केला, कटहल, जिम्मिकंद, तिरमल, कचनार के साथ-साथ स्थानीय रूप से उत्पादित की जानी वाली सब्जियां जैसे कददू, तोरी, चचरेंडा, मीठा करेला , कड़ुआ करेला, कच्चा पपीता आदि मौसमानुसार प्रयुक्त होता है I कभी कभार इनकी अधिक उपलब्धता के कारण इन्हें बरीक काटकर सुखी जाता है और बाद में प्रयोग हेतु रखा जाता है जिसे शुक-साग कहते हैं जिसे गर्म पानी में भीगोकर पकाया जाता है I यहाँ नीरि प्याज की भी सब्जी बनाई जाती है और प्राकृतिक रूप में उगने वाले मशरूम, गुच्छी, छतरी, (कुएडू) को भी चाव से खाया जाता है I गागटी और कुचौउली की जायकेदार सब्जियां कई विधियों से बनाई जाती है I गागटी और कुचौउली मिट्टी की हांडी में उबाल कर दही की साथ चटनी और चटपटे मसाले का उपयोग करके मक्की की रोटी के साथ शीत ऋतु की खुली धूप में खाने का अलग ही आनन्द है I राजगढ़ के क्षेत्र में अरबी और कचालू तथा स्थानीय हरी पत्तेदार सब्जियां के साथ एक विशेष रूप से सब्जी बनाने का भी कभी प्रचलन रहा है जिसे **पत्थर की सब्जी** कहते हैं I प्रचलित प्रथा अनुसार गिरी पर से कहीं बाहर जाते समय वापस लौटते हुए गिरी नदी से छोटे-छोटे कुछ खास तरह के गोल पत्थर जिन पर काई जमी होती थी अपने साथ घर लाते थे I उन्हें सावधानी पूर्वक धोकर छोंक में सब्जी की तरह डाल दिया जाता था और उन पत्थरों को तब तक हिलाया जाता था जब तक उन पर लगी काई पूरी तरह छूट न जाए Iकी छुटने के बाद उन पत्थरों को निकाल कर फेंक दिया जाता था पिच बेस तेरी या सामने के साथ मक्की की या को दो की रोटी के साथ खाते थे इस सब्जी में मछली की भांति गढ़ आने के कारण वैष्णव लोग इसे नहीं खाते थे परंतु मछली खाने वाले गरीब लोग इसे अपना शौक पूरा कर लेते थे बताते हैं इसमें प्रोटीन की मात्रा बहुत होती थी।

6. **अन्य दैनिक उपभोग हेतु खाद्य:** हाटियों के घरों में आटे की घेघोरे, चावल की बोड़ी, माश की बोड़ी, हैलरे की बोड़ी, माश का होलू , अखरोट की गिरी, भंगजीरा और भांग का आलण, गागटी और कुचालू के कोमल पत्ते की बोड़ी आदि भी नित्य भोजन में सम्मिलित हैं I

7. **पेय परम्परा:** गिरिपार सिरमौर की हाटी समुदाय में खाद्य भोजन के साथ लस्सी सबसे पसंदीदा पेय रहा है इसके अतिरिक्त यहाँ दूध, दही का सेवन भी भरपूर मात्र में किए जाता है I यहाँ बड़े विवाह के अवसर पर बड़ी थाली में दिया जाने वाला घी खाने की अपेक्षा पीने की उद्देश्य से ज्यादा झलकता है I बुराश, पुदीना, बेन्कषा, धनिया, मैथी की बीज को शरबत के साथ मिश्रित करने का चलन अत्यंत पुराना हैं जिसे अधिकतर आथित्य भाव या शरीर में विकार की स्थिति में पिलाया जाता है I लस्सी यदि ज्यादा खट्टी हो जाएँ तो प्राकृतिक विज्ञान से इसका खट्टापन दूर करने के लिए इसमें ठंडा पानी भरपूर मात्रा में मिलाया जाता है और एक जगह बिना हिलाए काफी समय के लिए छोड़ा जाता है जिससे खट्टाई पानी की रूप में ऊपरी परत पर एकत्र होती है

और बिना हिलाए वर्तन को टेढ़ा करने पर उस परत को बहार फैंका जाता है और शेष बची लस्सी ताज़ी लस्सी के सामान उपयोग की जाती है। इसे यहाँ पर स्थानीय स्तर पर निकली जाने वाली सूर मादक पेय है जिसे केवल बुजुर्गों को ही परोसा जाता रहा है। यह सूर सोमरस का ही एक प्रकार है जिसे बीसियों प्रकार की औषधीय पौधों व वनस्पतियों कूटकर व सुखाकर जौ के आटे के साथ मिश्रित करके कीम से बनाई जाती हैं। यह भी तीन प्रकार की होती है धिन्धटी, पखाले और सूर जिसे मिट्टी के बड़े घड़े में तैयार किया जाता है। जब सुराड़ी और कीम का मिश्रण दस से बारह दिन तक एक जगह बिना हिलाए रखा जाता है तो उसमें एक हल्की पानी की परत उपरी सतह पर बनती है जिसे पाखली कहते हैं और इसे यहाँ से एकत्र करके पेय हेतु प्रयोग किया जाता है। चूल्हे पर वाष्पीकरण और संवहन प्रक्रिया से निकला जाने वाला पेय ही सूर कहलाता है। सबसे ज्यादा मादकता इसी में होती है। चूल्हे से उत्तराने के बाद जब घोल ठंडा होता है तो इसमे से एक और तरल परत बनती हैं जिसे वर्तन की तिरछा करके किसी अन्य वर्तन में उडेला जाता है जिसे धिन्धटी कहते हैं। यहाँ पहले सूर को कांसे के बेलुए में दिए जाने की परम्परा रहे है जिसका स्थान अब गिलास ने और सूर का स्थान अंग्रेजी शराब में लिया है क्योंकि सूर निकलना अब कानूनी रूप से प्रतिबंधित है।

8. **तिलहन:** अखरोट, चुल्लू, खुमानी की गिरी को घर की सील बट्टे से पीस कर पतले कपड़े में लपेटकर खाद्य तेल निकलने की विधि परम्परागत रही है और खाद्य वस्तुओं को तलने के लिए इसका इस्तेमाल किया जाता रहा है। यहाँ पर तील से भी तेल निकालने का अति पुरानी प्राविधि आज भी प्रयोग में लाई जाती है। सरसों और सूरजमुखी के दानों से भी तेल निकाला जाता हैं जिसका उपयोग विभिन्न प्रकार की खाद्य वस्तुओं को तलने के साथ-साथ दल,सब्जियों और साग में छौंक के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है। यही तेल शरीर और बालों में इस्तेमाल के लिए भी प्रयोग होता है। तिलहनों का तेल के अतिरिक्त मेशण के लिए भी उपयोग होता है जैसे-भंग्जीरा, भांग के दाने और अखरोट की गिरी सिडकु, बेड़ोली, तेल्पकी, गुड़ोली के साथ उपयोग किया जाने वाला मेषण इन्ही तिलहनों से बनता हैं। जब सम्पूर्ण क्षेत्र में अफीम उगाना गैरकानूनी नहीं था तब इसका पोस्त भी मेषण के रूप में प्रयुक्त होता था। संगडाह के क्षेत्र में परम्परागत रूप से खाया जाने वाला धौती-भात में अखरोट, भंग्जीरा और भांग का मिश्रण आज भी चाव से बनाया और खिलाया जाता है जिसे घी से साथ और दही की साथ भी परोसा जाता है। सरसों के दानों को कोल्हू में पिनाया जाता था और उससे बची खल पशुओं को दालो के रूप में खिलाई जाती है।
9. **चटपटे खाद्य:** चटनी, अचार और मसालेदार खाद्य का भी गिरिपार सिरमौर में काफी प्रचलन रहा है लेकिन सबसे बड़ी विशेषता इनकी यह रही है कि ये स्वास्थ्यवर्धक और सुपाचय होते हैं। अधिकतर चटनी, अचार आदि प्राकृतिक स्त्रोतों की उपलब्धता पर ही निर्भर रहे हैं। यहाँ इमली, आम, आड़ू, नाशपाती, सेब, प्याज, लहुसन, अदरक, आंवला, पुदीना, टिम्बुर, अमरीला आदि को विभिन्न प्रकार की चटनियाँ और चटपटा मसाला बनाने में चिरकाल से प्रयुक्त किया जाता रहा है जिनका सेवन सातु, रोटी के अतिरिक्त भोजन के साथ चटपटा स्वाद लेने हेतु किया जाता हैं।

लहसुन और प्याज की हरी पत्तेदार सब्जियों को भी चटपटे मसाले की रूप में उपयोग होता है I प्याज, आलू , गागटी, कुचाऊली, अदरक और आवंला को चूल्हे में गर्म राख के बीच दबाकर पांच मिनट में ताज़ी चटनी और मसाला तैयार करने का लोकप्रिय तरीका सदियों से रहा है।

10. **तरल खाद्य:** हाटियों में कई पौष्टिक खाद्य व्यंजन अर्ध तरल अवस्था में भी पकाए जाते हैं जिसमें कई प्रकार की खीर जिसे लिम्ब्ड़ो कहते हैं शामिल है I चावल की खीर के अतिरिक्त यहाँ के खाद्य में शामिल शांओक, कावणी, चिणोए आदि का खीर नुमा भोज्य पकाया जाता है जिसे ज्यादातर दूध के साथ ही बनाया जाता है I कावणी और चिणोए को लस्सी के साथ पकाकर रोटी के साथ खाया जाता है और इसे नमकीन बनाया जाता है I बच्चे के लिए शाओंक की पौष्टिक मीठी खीर अक्क्सर बनाई जाती है और ढूढ़ पिलाने वाले माता को भी शांओक की खीर अक्सर दी जाती है जिससे बच्चे के लिए पर्याप्त मात्र में माँ का दूध मिल सके I रोगी व्यक्ति के लिए भी पतला-पतला लिम्ब्ड़ो बनाया जाता है जिसे अधिक सुपाचय और शीघ्र स्वस्थ्य लाभ लेने के लिए उत्तम माना जाता है I

ख. परम्परागत व्यंजन व पकवान

1. **पटांडे व पॉली:** घर में केवल अतिथियों के आगमन के लिए या फिर उत्सवों, पर्वों, त्यौहारों के समय के लिए ही गेंहू का आटा रखा जाता था I गेंहू के आटे का पतला घोल बनाकर पटांडे बनाए जाते हैं जिसे बड़े तवे भर कर बनया जाता है I अक्सर पटांडे के लिए आटा दोपहर के समय बना कर साफ़ पतले कपडे से ढका जाता है और सांय के समय गर्म तवे पर शैल के बने कुचे से घी की लवाण लगाकर गीले हाथ में पटांडे लिए बने आटे को डाला जाता है जिसे बीच बीच में हाथ गीला करके तब तक बाह्य तरफ से मध्य की ओर घुमाया जाता है जब तक यह पूरी तरह से एक सामान फ़ैल न जाये I डामण (पलटा) से इसे धीरे-धीरे चरों कोनों से उकेर कर पलटा जाता है और कुछ ही क्षणों में यह पककर तैयार हो जाता है I इसे चूल्हे में नहीं पकाया जाता है और अक्सर उथले तवे पर ज्यादा अच्छा पटांडा बनता है I इस बारीक महीन गोलाकार पटांडे को त्रिभुजाकार रूप में तह करके रोटी की डाले में परत दर परत रखा जाता है I पटांडा केवल संक्रांति के दिन या फिर विशेष त्यौहारों व समारोहों में ही बनाएं जाते हैं I संगडाह में विवाह के अवसर पर पटांडे बनाने का खूब प्रचलन है I पॉली बनाने के लिए गेंहू के गीले आटे को भी काफी समय तक गूंथ कर रखा जाता है ताकी इसमे पूरी तरह लौच उत्पन हो जाये ताकी इसे उलटे हाथ पर कुशलता से फैलाया जा सकें I केवल कुशल व प्रवीण महिला ही पौली बना पाती है और उल्टे हाथ की हथेलियों से कोहनी तक का सहारा इसे बनाने में लिया जाता है I कभी कभार कुशल महीला तवे से बड़ी पौली बनाने में भी दक्ष होती है I कागज के सामान महीन पौली केवल विवाह के अवसर पर बनाई जाती है जिसे कुशल रोटियारी के मध्य एक हुनर प्रतियोगिता के रूप में भी जाँचा जाता है I
2. **खूबल्लू:** यह संपूर्ण गिरीपार के हाटियों का परंपरागत व्यंजन है जिसे बनाने के लिए सबसे पहले गेहूं के आटे को काफी गीला गुथा जाता है I इसके पश्चात इसका मेषण तैयार किया जाता है जिसमें गुड़, भांग, भंग्जीरा और अखरोट तथा अन्य सूखे मेवे पीसकर मिलाए जाते हैं। बड़े

बर्तन को चूल्हे पर रखकर इसमे आवश्यकता अनुसार पानी की मात्रा डालकर चूल्हा जलाकर पानी को उबाला जाता है I पानी पूरी तरह से उबलने के पश्चात गुथे हुए आटे की गोल आरियाँ बनाकर इसके अंदर तैयार किया हुआ मेषण डाला जाता है और इसे चारों ओर से लपेटकर गोलाकार बनाया जाता है I तत्पश्चात उबले हुए पानी में इसे डाला जाता है I एक-एक करके सारे आटे से गोलाकार खूबल्लू में खोलते पानी में डालकर काफी देर तक ढक्कन लगाकर पकाया जाता है I मासाहारी अतिथियों के लिए कई बार मेषण के साथ बकरे की चर्बी के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर डाले जाते हैं जो मेषण के साथ स्वत: ही खोलते पानी में पक जाते है I आधे घंटे तक पकाने के पश्चात जब सभी खूबल्लू पानी के ऊपर तैरते नजर आते हैं तो यह अनुमान लगाना सहज होता है कि सारे खूबल्लू अच्छी तरह से पक गए हैं I इन्हें घी के साथ कांसे की थाली में परोसा जाता है I एक हुष्ट-पुष्ट व्यक्ति ही एक से अधिक अधिक खाने का मादा रखता है अन्यथा एक खूबल्लू खाकर ही संतुष्टि होती है।

3. **सिड़कू:** यह भी हाटियों का परंपरागत व्यंजन है I इसे बेड़ोली की तरह ही बनाया जाता है परंतु यह आकार में बड़ा और इसमें मेषण के लिए केवल धुली माश का प्रयोग किया जाता है I माश को एक दिन पहले गर्म पानी में भिगोने के लिए डाला जाता है और इसे सिड़कू बनाने से पहले दोनों हाथों से मसलकर छिलका उतारा जाता है और बार-बार धोया जाता है जब तक पूरी तरह से माश छिलका रहित न हो जाए I तत्पश्चात धुले माश को पत्थर की बड़ी सील पर पीसा जाता है और इसके साथ आवश्यकता अनुसार नमक, अदरक, कम मात्रा में मिर्च डाली जाती है। तैयार गीले गुंथे आटे की बड़ी आरी या रेगोली बनाकर माश से बने मेषण को इसके मध्य में डाला जाता है और चारों ओर से आटे को बराबर मात्रा में लपेटा जाता है जिससे पुनः गोलाकार आरी या रेगोली बनती है ताकि मेषण समान रूप से चपटी रोटी में फैल सके I चूल्हे पर चढ़ाए गर्म तवे पर दोनों तरफ से हल्का पकाया जाता है और दुसरे चूल्हे पर चढ़ाए गए बड़े बर्तन में लगे कांश या बान के अथारे के नीचे थोडा पानी डाला जाता है और तेज आंच में तब तब पानी उबाला जाता है जब पानी से भाप बनना आरम्भ न हों I ढक्कन को खोलकर तवे पर रखे सिडकु को एक-एक करके अथारे के ऊपर रखा जाता है I एक के ऊपर एक परतदार सिड़कू डाले जाते हैं और मध्य में खाली जगह भाप को ऊपरी परत तक आने के लिए छोड़ी जाती है ताकि भाप समान रूप से सभी छिड़कू की परत तक पहुँच सके और सभी समान रूप से पक सकें I पकाने के पश्चात इसे भी कांसे की थाली में घी के साथ परोसा जाता है। यह सुपाचय और पौष्टिक होने के साथ साथ काफी गर्म होता है इसलिए इसे अधिकतर सर्दियों का खाजा माना जाता है I

4. **उलौऊले:** गिरिपार के हाटियों का विशेष परंपरागत पकवान है उलौऊले, जिसे विशेष अवसरों पर ही बनाया जाता है क्योंकि इसे बनाना काफी श्रम साध्य कार्य है I इसका आटा विशेष रूप से तैयार किया जाता है जिसमें लगभग 8 से 10 प्रकार के अनाज मिश्रित किए जाते हैं जैसे गेहूं. मक्की, कोदा, चौलाई, कावणी, शांओक, चिणोए, भोअट आदि अनाजों को आवश्यकता अनुसार आनुपातिक रूप में मिश्रित किया जाता है और इसे घराट में पीसाने के उपरांत पहले गर्म पानी में आटे को डालकर सख्त आटा तैयार किया जाता है जिसे किसी बड़ी परात में निकाल कर गूंथ

लिया जाता है और केवल हल्के पानी की बंदे ही गूंथने के लिए प्रयोग की जाती है। जब आता गूंथ करके तैयार हो जाता है तो कांश और बान का अथारा लगे बड़े बर्तन में थोड़ा पानी डालकर चूल्हे पर उबाला जाता है जिससे पकाने हेतु भाप तैयार हो सके। परात में तैयार सख्त गूंथे आटे को छोटी-छोटी गोल आरियों या रेगोलियों में लपेटा जाता है और प्रत्येक आरी को समान रूप से मध्य से गहरी बनाकर शेष भाग को सिरे की तरफ से चपटा बनाया जाता है। आरी के मध्य में गहरे भाग में माश के बने मेषण को भरा जाता है और समरूप में बनी दूसरी आरी को इसके ऊपर उल्टी लगाकर दोनों चपटे सिरों को परस्पर हाथ से हल्का दबाकर जोड़ा जाता है ताकि दोनों सिरों की बारीक पतली गोलाकार परत बन जाए। एक हाथ में गोलाकार परत वाले मेषण डले आटे को रखा जाता है और दुसरे हाथ के अंगूठे और नाखून की सहायता से गोलाकार परत को आड़े-तिरछे आकार में मोड़ा जाता है और इस क्रम को निरंतर दोहराया जाता है जब तक सम्पूर्ण गोलाकार परत एक समान घुमावदार डिजाइन का रूप न बन जाएं जो संयुक्त सिरों के बाहर एक सुंदर लड़ीनुमा आकर बन जाता है। तत्पश्चात इसे मोकड़ी या हल्दी के पते पर रखा जाता है और जब अथारे लगे वर्तन की एक पूरी परत ढकने के लिए पर्याप्त न हो तब तक तैयार उलौऊलों को नहीं डाला जाता ताकी सभी एक साथ पक सकें और दूसरी परत रखने में आसानी हो सके और एक के ऊपर एक परत चढ़ाने में मुश्किल ना हो। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है जब तक गूथा हुआ आटा समाप्त न हो। इसके बाद काफी देर तक इन्हें पकाया जाता है। पक्के हुए उलौऊलों जब ठंडे हो जाते हैं तो इनमें एक प्राकृतिक मिठास उत्पन्न होती है। दुसरे और तीसरे दिन तक इसकी मिठास और स्वाद काफी बढ़ जाता है और यह तथ्य उल्लेखनीय है कि यह खराब नहीं होता है। इसे खाते हुए घी की अधिक मात्र की आवश्यकता रहती है। कभी-कभार दुसरे दिन इसे दही के साथ खाना पसंद किया जाता है। भातियोज से पहले बोश्ते के दिन उलौऊले सुबह-सुबह लगभग पांच बजे बनाए जाते है और बोश्ते के दिन इन्हें चैली, दुपारी तथा बियाली के लिए परोसे जाते हैं। इसके पश्चात माश का बना होलु भात के साथ दिया जाता है।यह इतने स्वादिष्ट होते हैं कि कई लोग इसे भातियोज़ के पश्चात् हतके के दिन भी खाते हैं। इस पकवान की विशिष्टता इस बात से भी समझी जाती है कि परिवार के सदस्य किसी कारणवश घर नहीं आ सकते उन्हें भी उलौऊले का हिस्सा हर हाल पहुंचाने का प्रयास किया जाता है।

5. **तेलपाकी:** तेल में बनाई जाने वाली मेषण से भरी मोटी रोटी तेलपाकी कहलाती है और इस संपूर्ण प्रक्रिया को ताईए लगाना कहलाता है। क्योंकि हाटियों का यह भी महत्वपूर्ण परम्परागत व्यंजन है इसलिए इसे दियाली, बिशु व मशरली के अतिरिक्त उन सभी शुभ व महत्वपूर्ण अवसरों पर बनाई जाती हैं जिन्हें उत्सव की तरह मनाया जाता है। किसी विशेष अतिथि के आगमन पर भी तेलपाकी बनाई जाती है। यहाँ किसी के आगमन पर ताईए लगाने का अर्थ है उसका विशिष्ट सम्मान करना। यह संपूर्ण प्रक्रिया गेहूं के बने आटे को गुंथकर प्रारंभ की जाती है। माश से बने मेषण या फिर भांग-भंग्जीरा, अखरोट व नारियल का गरी बुरादा मिश्रित कर मेषण के रूप में प्रयोग किया जाता है। बड़े आकार की गोल आरी या रेगोली बनाई जाती है जिसके मध्य में तैयार किया गया मेषण डाला जाता है और फिर पुनः इसे चपटे अकार की बनाई जाती है। चूल्हे पर रखें

गर्म तवे पर पकाकर इसे दुसरे चूल्हे पर रखे खौलते तेल के बर्तन में डाला जाता है पूरी तरह से फूलने के पश्चात इसे बाहर निकाला जाता है । यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती हैं जब तक इसे बनाना बंद न किये जाये । इसे भी घी के साथ खाया जाता है और कभी कभी इसके साथ चीनी या शकर भी परोसी जाती है । बड़े विवाह के अवसर पर भी गिरिपार के कुछ क्षेत्रों में बनाए जाने की परम्परा आज भी विद्यमान है । शाम की बची हुई तेलपाकी का सुबह खाने का अपना अलग ही आनन्द है ।

6. **कचौड़ी:** उपरोक्त उल्लेखित तेलपाकी की प्रक्रिया अनुसार ही गूथे आटे की आर्री या रेगोली के मध्य केवल माश के मेषण को डाल कर बनी चपटी मोटी रोटी को सीधा गर्म खौलते तेल में डाल दिया जाता है और पूरी तरह फूलने की बाद इसे बाहर निकाल कर घी और शक्कर के साथ परोसा जाता है । इसे भी शादी-विवाह के अवसरों पर पकाया व परोसा जाता है ।
7. **खीर:** हर संग्रांद (संक्रांति) के दिन बनने वाला खीर-पटांडे का पकवान संपूर्ण गिरिपार क्षेत्र में परंपरागत व्यंजन है । पटांडे बनाने की सम्पूर्ण विधि पहले ही वर्णित की जा चुकी है । खीर चावल व दूध से तैयार की जाती है जिसमें गुड़ का मीठा ज्यादा पसंद किया जाता है लेकिन पाठकों की जानकारी के लिए उल्लेखित करना आवश्यक है कि परम्परागत रूप से बनाई जाने वाली खीर नमकीन होती है और इसे घी तथा पटांडे के साथ खाई जाती है । बड़े स्तर पर बनाई जाने वाली खीर के लिए गाँव के हर घर से उपलब्धता अनुसार दूध एकत्र किया जाता है । निरामिष व्यक्तियों के लिए भी उत्सव या समारोह में खीर ही बनाई जाती है ।
8. **खेंडा या घेंडा:** द्रुत गति से बनने वाला परम्परागत पकवान खेंडा या घेंडा संपूर्ण गिरिपार क्षेत्र में सदियों से प्रचलन में रहा है जिसे दस मिनट में तैयार किया जा सकता है । इसका अधिकतर सेवन सर्दियों के मौसम में ही किया जाता है क्योंकि यह काफी गर्म तासीर का होता है । इसे केवल घी के साथ ही खाया जा सकता है । इसे बनाने में सबसे पहले गुड़ को आवश्यकता अनुसार पानी में डालकर बर्तन को चूल्हे पर चढ़ाया जाता है और पानी को तब उबाला जाता है जब तक संपूर्ण गुड़ इसमें घुल नहीं जाता है । गेंहूं के आटे को छानकर किसी बर्तन में लाया जाता है और खौलते हुए पानी में डाला जाता है । लकड़ी के बने विशेष प्रयुक्त होने वाले डंडे, जिसे खैनाठा कहते हैं जिसका अगला भाग नुकीला होता है, का प्रयोग पानी में डाले गए आटे को हिलाने में किया जाता है ताकि आटा पूरी तरह से एक समान मिश्रित हो सके । तब तक आटे की मात्रा डाली जाती है जब तक घोल सख्त न हो जाए । इसके पश्चात इसे चूल्हे से नीचे उतार कर दोनों हाथों से डंडे को सख्त हुए घोल में काफी देर तक हिलाया जाता है ताकि पूरी तरह से मिश्रित हो जाए और कहीं भी सूखे आटे का कोई भाग ना बचे जिन्हें गोलमें कहते हैं । तत्पश्चात हाथ को ठंडे पानी में डालकर तैयार किए गए खेंडे को किसी अन्य बर्तन में निकाल कर खाने के लिए थाली में घी के साथ परोसा जाता है। यह इतना पौष्टिक व सुपाच्य होता है कि हाटियों में प्रसूता को खेंडे खिलाने की परंपरा सदियों से चली आ रही है । प्रसूता को खाने में खेंडा घी के साथ दिन में तीन-चार बार खिलाया जाता है और यह पुष्ट तथ्य है कि यह आहार मां तथा शिशु दोनों के लिए अत्यंत पौष्टिक व स्वास्थ्य वर्धक होता है । भाटियोज के सुबह हर घर में खेंडा

बनाया जाता है और घर के हर सदस्य को गरमा गरम खिलाया जाता है I किसी नवयुवक के शारीरिक बल को परखने के लिए एक लोक कहावत प्रचलित है-“मेरी माँए भी मेरी बेई खूब खिंडा खाए थवा” अर्थात मेरी शारीरिक क्षमता बढाने के उद्देश्य से मेरी माँ में मेरे शैशवकाल में खूब खेंडा खाया है I कभी कभार दूध में नमकीन खेंडा भी पकाया जाता है और इसे भी घी के साथ ही खाया जाता है I मांघ के माह में व सम्पूर्ण सर्दी में खेंडा नियमित रूप से बनता है I यदि कोई मेहमान आ जाए तो इसे शीघ्रता से तैयार किया जाता है और बड़े चाव के साथ खिलाया तथा खाया जाता है। कुछ क्षेत्रों जैसे मस्त भोज या तेड़ भोज में पहले आटे को तवे या कढ़ाई पर घी के साथ हल्का भुना जाता है और इसके पश्चात ही इसे गुड़ वाले पानी में घोला जाता है I यह पचाने में हल्का माना जाता है लेकिन इसकी पौष्टिकता थोड़ी कम हो जाती है

9. **सिअणे:** गिरिपार में गेहूं के आटे से बनाई जाने वाली सिअणे आधुनिक सेवईयां जैसी ही हैं I पहले गेहूं के आटे को सख्त गूंथा जाता है और घी वाले हाथ से हल्का-हल्का तवे पर सीड़ों के रूप में पकाया जाता है I फिर से इसे सख्त आटे की रूप में पकाया जाता हैं I गूंथे आटे को लम्बे पतले आकर का रूप दिया जाता है और फिर इसको मुहं के बल उल्टे रखे मटके पर दोनों हाथों की हथेलियों से रगड़ा जाता है जिस पर हल्का तेल या घी मला जाता है ताकि इस पर आटा न चिपके I फिर जब लम्बी ढेर इस महीन आटे की लग जाती है तो इन्हें हाथों की कलाइयों पर लम्बवत लटकाया जाता है I शेकुड़ी या शेकडो के सिरों पर सुखाने के लिए धूप में खा जाता है I सूखने के बाद इसे दूध के साथ पकाया जाता है और स्वादानुसार इसे मीठा या नमकीन पकाया जाता है और खाने के लिए भोजन के साथ परोसा जाता है I कभी कभार इसे और स्वादिष्टता प्रदान करने हेतु पहले घी में हल्का भुना जाता है फिर दूध में पकाया जाता है I

10. **ढिंढकी:** गेहूं और चावल के आटे में थोड़ा सा मक्की का आटा भी मिश्रित किया जाता है और पहले सख्त आटा गूंथा जाता है फिर मोटी रोटियों के रूप में भाप पर पकाया जाती है जिन्हें सीड़अ कहा जाता है I इन सीड़अ को गर्मागर्म पुनः आटे की तरह सख्त रूप में गुंथा जाता है और गुंथे आटे की गोल लोइयां बनाई जाती है जिन्हें पत्थर के बने खांचे में रखा जाता है जिसके कारण उन पर विभिन्न प्रकार की फूल और पत्तियों की आकृतियाँ गोल बने आटे की लोइयों को छपती हैं I फिर उसके बाद एक टोकरी या शेकड़ी में बनाई गयी ढिंढकियों को केले के पत्तों पर रखा जाता है और उसके ऊपर कपड़ा लगा दिया जाता है फिर धूप में रखी जाती है I शाम को खाने के लिए तैयार होती हैं और इनमें प्राकृतिक मिठास आ जाती है I इन्हें घी के साथ खाते है I तेज़ मीठे के शौक़ीन लोग घी के साथ शक्कर मिलाकार खाने का चाव लेते है।

11. **सुतौऊले:** सुतौऊले भी गिरिपार का पारंपरिक व्यंजन है I यह कोदो के आटे के बनते है I इसके लिए पहले आटे को सख्त गूंथ कर भाप में मोटी रोटियां पकाई जाती है जिन्हें सीड़अ कहते हैं I इन सीड़ों को फिर सख्त आटे के रूप में गूंथा जाता है और फिर गूंथे हुए आटे को लकड़ी के बने खांचे जिसे घोड़ा कहते हैं में डाला जाता है I इस घोड़ेनुमा खांचे में एक घुमाने का हथा लगा होता है जिसको पकड़ कर बलपूर्वक घुमाया जाता है I इस घोड़ेनुमा खांचे के पेट की तरफ बारीक छिद्र होते हैं जिसमें से डाले गए आटे को ज़ोर से घुमाने पर उन छिद्रों से बारीक आटे की लम्बी

पतली रस्सी नुमा सैवाइयां बनती हैं जिन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़कर शक्कर घी या फिर दाल के साथ खाया जाता है ।

12. **गुल-गुले** : गिरिपार में पकाया और खाया जाने वाला यह खाद्य एक मीठा व्यंजन है । गिरिपार के कई क्षेत्रों में यह पूड़े के नाम से प्रचलित है । इस पकवान को बनाने के लिए पहले गुड़ का घोल बनाया जाता है फिर उस घोल को छान करके गेहूं के आटे में मिलाया जाता है । आटे और गुड़ से बने अर्ध तरल मिश्रण को ऐसे तैयार किया जाता है ताकि यह एक धार के रूप में बड़ी सरलता से चूल्हे पर रखे खौलते तेल के वर्तन में गिराया जा सके । सीधे तल वाली ताई को जलते चुल्हे पर रख कर उसमें आवश्यकतानुसार सरसों का तेल डाला जाता है और तेल पक जाने पर गिलास या कड़छी की सहायता से तैयार घोल को एक जगह पर उड़ेला जाता है और यह स्वत: ही चरों तरफ बराबर फ़ैल जाता है । एक के बाद कड़छी निरंतर ताई में उड़ेली जाती है जब तक इसमें जगह उपलब्ध हों । एक बार में सात या आठ गुल-गुले तैयार हो जाते हैं । पकाने के पश्चात् ये तेल की सतह पर तैरते हैं जिन्हें चिमटे की सहायता से लकड़ी के बने खांचे के बीच में रखे जाते हैं और फिर उन्हें एक साथ निचोड़ा जाता है ताकि बाहरी रूप से लगे तेल को अलग किया जा सकें । कुछ लोग इसमें स्वाद बढाने के उद्देश्य से मीठी सौंफ, गरी बुरादा आदि भी घोल के साथ मिलातें हैं । तैयार गुल-गुलों को अरबी की सब्जी के साथ भी खाया जाता है लेकिन ज्यादातर इसे खीर के साथ दिखाया जाता है और इसके साथ घी लिया जाता है।

13. **नमकीन खेंडा**: यहाँ गिरिपार में खेंडा दो प्रकार का बनाया जाता है-मीठा और नमकीन । नमकीन खेंडा दूध को उबालकर बनाया जाता है । भैंस या गाय का गाढ़ा दूध लिया जाता है । दूध को पहले उबलने दिया जाता है फिर उसमें गेहूं और थोड़ी मात्रा में मक्की का आटा लिया जाता है । इन दोनों आटे को अच्छी तरह से मिश्रित करके उबलते दूध में डाला जाता है और इसको लकड़ी के लम्बे नुकीले डंडे से हिलाया जाता है जब तक यह अच्छी तरह से पक न जाये । देर तक पकाने के बाद जब उसको कढ़ाई में इकट्ठा करना होता है तो उसमें दो-तीन चम्मच मक्खन डाला जाता है । फिर तैयार खेंडे को मक्खन के साथ खूब रोस्ट किया जाता है ताकि मक्खन उस में ही मिश्रित हो जाए । खेंडे को कढ़ाई में एक ही जगह इकट्ठा किया जाता है ताकि निकालने में आसानी रहे । मक्खन से इसका स्वाद उभर आता है इसीलिए इसमें विशेष कर अंत में मक्खन डाला जाता है । नमकीन खंडे को भी घी के साथ खाया जाता है। नमकीन खेड़ा विशेष रूप से तब बनाया जाता था जब लड़की मायके आई हुई होती है या फिर जब पशुओं को एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित किया जाता है ।

14. **जौंदे**:कोदो के आटे को गूंथ कर सख्त सीड़ों के रूप में पकाया जाता है और फिर से गूंथने का बाद आटे को लकड़ी के बने खांचे, जिसमें छिद्र होते हैं, से बलपूर्वक दबाव के साथ खांचे में लगे हत्थे से घुमाया जाता है जिसके कारण बारीक लम्बे धागे के आकार के आटे के रेशे निकलते हैं जिन्हें एकत्र करके घी की साथ खाया जाता है ।

15. **चुलै**: कोदो और चौलाई के मिश्रित आटे का पतला घोल बनाकर चूल्हे पर रखे खौलते तेल के वर्तन जिसका तला सपाट होता है में कटोरी या कड़छी से डाला जाता है और पूरी तरह फूलने

की इसे पलटा जाता है । जब दोनों तरफ से पक कर तैयार हो जाता है तो इसे निचोड़ कर तेल से बहार निकाल लिया जाता है । इन्हें भी घी या सब्जी और दाल की साथ खाया जाता है । इसमें हल्की मिठास होती हैं क्योंकि आटे के मिश्रित घोल को किण्वन के लिए घंटों रखा जाता है ।

16. **धुटी-भात**: चावल को पकाकर भात बनाया जाता है जिसे धुटी और घी के साथ खाया जाता है । संगडाह और राजगढ़ के क्षेत्रों में इसे बड़े चाव से बनाया और खिलाया जाता है । भात लाल धान से बनता था जिसे लोग खुद के क्यारों में उगाते हैं लेकिन अब धान उगाने का प्रचलन काफी कम हो गया है । माश को गर्म पानी में भीगो कर इसका छिलका हाथ से रगड़कर उतारा जाता है और फिर इसे भुनकर सील पर पीसा जाता है। पीसे हुई माश के साथ अखरोट की गरी, भंग्जीरा और भांग के दाने भी पीसे जाते हैं ताकी इसका स्वाद और बढ़ाया जा सके । चावल के साथ धुटी आवश्यकतानुसार मिलायी जाती है और ऊपर से ढेर सारा घी दिया जाता है । कुछ लोग घी के अलावा दही के साथ खाना भी पसंद करते हैं । कई पर्वों और उत्सवों पर इसे अतिथियों को परोसा जाता है विशेषकर निरामिष व्यक्तियों का खाजा माना जाता है ।
17. **अस्कोली**: चावल की आटे का तरल घोल को पत्थर के अर्ध गोलाकार खोखले खांचे नुमा तवे पर उड़ेलकर इन्हें पकाया जाता हैं और ऊपर से इसी आकार के खांचे से ढाका जाता है जब तक कि आटा पक कर तैयार न हो जाये । इन्हें घी तथा शक्कर के साथ खाया जाता है लेकिन कुछ लोग इनका सेवन दाल के साथ भी करते हैं ।
18. **मश्यालो भात:** लाल रतान धान की किस्म का माश के साथ पकाया जाने वाला व्यंजन मश्यालो भात कहा जाता है । मशरली या दियाली के दुसरे दिन भिन्ऊरी की सुबह इसे बनाया जाता है और घी तथा दही की साथ खाया जाता है । मायके से ससुराल जाने वाली विवाहिता को भी नमकीन मश्यालो भात पकाया जाता है ।
19. **छांईछो**:देव जागरण के समय बनाई जाने वाली बिना दूध की खीर को छांईछो कहते हैं जिसे गिरिपार की कई क्षेत्रों में बनाया जाता है जब देवता को मन्नत पूरी होने पर घर में आतिथ्य हेतु आमंत्रित किया जाता है । देवता के साथ आने वाले अतिथियों और गाँव से आमंत्रित जागरुओं के लिए खाने में एक समय यह छाईछो अवश्य बनाया जाता है । चावल को गुड़ और पानी के साथ खूब पकाया जाता है और इसमें कई तरह के सूखे मेवें जैसे अखरोट की गरी, नारियल का बुरादा, मीठी सौंफ, छोटी इलायची, तेज़ पता आदि । इसकों भरपूर स्वादिष्ट बनाने के उद्देश्य से इसमे काफी मात्रा में मक्खन या घी पकाने के लिए डाला जाता है । छाईछो को गेंहू की रोटी या पटान्डे और घी के साथ खाया जाता है और इसे सुपाचय के साथ साथ स्वस्थ्य वर्धक भी माना जाता है और सात्विक भी ।
20. **चिलड़ा**: इसे गिरिपार की विभिन्न क्षेत्रों में कई नामों से पुकारा जाता है जैसे-चिल्टा, लुश्का, चिलड़ा आदि । इसे पटान्डे की तरह ही बनाया जाता है लेकिन फर्क सिर्फ यह होता है कि इसे कम चौड़ा और अधिक मोटा बनाया जाता है । गेंहू के आटे से बने अर्ध तरल घोल को गर्म तवे पर डालने से पहले घी को शैल के बने कुलचे से लगाया जाता है जिसे लवाण कहते हैं । फिर घोल को हाथ से तवे पर डाला जाता है और हाथ को पानी में डाल कर हल्के से तवे पर पड़े घोल पर

घुमाया जाता है ताकि घोल बराबर मात्रा में फैलाया जा सके I डामण की सहयता से इसे पलटा जाता है और दोनों तरफ से पकने के बाद निगाल के बने डाले में निकला जाता है I इसे ज्यादातर शहद और घी के साथ खाना पसंद किया जाता है I सावन की हरियाली की संग्रांद के दिन इसे हर घर में बनाए जाते हैं और देव, देवियों और पापों को जिमाया जाता है I नई फसल आने पर भी चिलड़े प्रसाद स्वरुप देवता को अर्पित किये जाते हैं जिसको पुरो कहते हैं I एक और विशेषता इनकी यह है कि ये आलणे ही बनाए जाते है I

21. **मासाहारी भोजन**: सिरमौर का गिरिपार क्षेत्र विषम भौगोलिक क्षेत्र है और यह 100% पहाडी क्षेत्र हैं I ठण्डी जलवायु के कारण कृषि की उत्पदकता जीवन निर्वाह के लिए सदियों से अपर्याप्त रही है I भरण-पोषण की आवश्यकता की पूर्ति हेतु हाटियों को पशु पालन के व्यवसाय अपनाने के लिए प्रेरित किया और यहाँ चिरकाल से बकरियां-भेड़ें, सूअर आदि आवश्यक उतपादों के साथ-साथ मांस के उद्देश्य से भी पाले जाते रहे हैं I 90% से ज्यादा आज भी यहाँ की जनसँख्या मासाहारी है I लेकिन पाठकों की जिज्ञासा हेतु यह तथ्य उजागर करना आवश्यक है कि यहाँ मांसाहारी भोजन दैनिक भोजन का भाग नहीं है यह मांघ के माह में पकता है या फिर किसी उत्सव या समारोह में I यहाँ अधिकतर मांस को प्राकृतिक विज्ञान से प्रसंसाधित करके वर्ष भर संरक्षित किया जाता हैं I माघ माह से पूर्व २८ गते पौष को भातियोज़ के दिन हर घर में बकरा काटे जाने की परम्परा है I खोड़े और बिशुड़ी के दिन बकरे के सिर और टाँगे पकाई जाती है चूँकि सुखाने के बाद इन्हें लम्बे समय तक रखी जा सकती है I हर घर में भातियोज़ के दिन कटाने के लिए बकरा या खाडू पाला जाता है और इसकी चर्बी का उपयोग खुब्लू, बेड़ोली या गुड़ोली के साथ भी किया जाता है I सम्पूर्ण परिवार मासाहारी होने पर चर्बी को सब्जी या दाल में तुड़के के लिए भी इस्तेमाल किया जाता रहा है I कलेजे को कच्चा खाने और लहू को भी पका कर रोटी के साथ खाने का प्रचलन है Iका कई लोग बकरे की आँतों में चर्बी भरकर लम्बे समय तक संरक्षित करते हैं I मांस की पतली लंजारियां बनाकर छत पर रस्सी में टांगने के पश्चात् आठ दिनों तक अंगीठी जलाकर धुएँ से इसे सुखाया जाता है और यह बिल्कुल ताज़े मांस की तरह सुरक्षित रहता है I सूखे मीट को पकाने से पहले इसे दिन भर लस्सी में डुबोया जाता है और उसकी ताज़गी पुनः लौट आती है I मीट को अक्सर मिट्टी की हांडी या कांसे के भड्डू में ही पकाने को प्राथमिकता दी जाती है I सम्पूर्ण माघ महीने में दावतों का दौर होता है और विवाहित औरतों को भी इनके मायके में हिस्सा रखा जाता है I हाटियों में चनालू, और गुजरा भी किसी विशेष व्यक्ति या करीबी को देने का रिवाज़ आज भी विद्यमान है। हाटियों में मछली खाने का भी प्रचलन है जिन्हें लोग पाणको या जाल की सहायता से स्वयं नदियों से पकड़ते हैं I मुर्गे, तीतर, चकोर, घुगती, घोल, कक्कड़, शाईल आदि जंगली पक्षियों व जानवरों को खाने से परहेज नहीं करते हैं I

22. **मुड़ा और शाकोली**: विभिन्न त्यौहारों पर यहाँ गेंहू व धान का कई किस्म का मुड़ा बनाया जाता है I गेंहू को ओखल में छड़ने के बाद बड़े डब्बे में उबाल कर कई बार पानी में धोया जाता है फिर धूप में सुखाया जाता है जिस पर लस्सी और नमक का घोल छिड़का जाता है ताकि इसके स्वाद

को बढ़ाया जा सके । सुखाने के बाद इसे बालू की साथ कढ़ाई में चूल्हे पर भुना जाता है जिससे यह खिल कर बहुत ही स्वादिष्ट हो जाता है । कई बार गेंहू को सीधे ही चूल्हे पर कढाई में भुना जाता है उसे स्वादिष्ट बनाने के लिए इसमें भरपूर मात्रा में भांग या भंग्जीरा के भुने हुए दाने डाले जाते हैं । धान को पन्द्रह दिन बटुए में भिगोने के बाद चूल्हे पर कढ़ाई में इसे भुना जाता है और तुरंत गरमागरम ओखल में मुसल की सहायता से दो लोगों द्वारा तेज़ी से कूटा जाता है और फिर हवा में बिनोने का बाद भूसा अलग करके चिउड़ी मुड़ा बनकर तैयार होता है । चावल को उबाल कर दानों को सुखाया जाता है और फिर सूखे दानों को बालू के साथ भुन कर भी भतायण मुड़ा बनाया जाता है । शाकोली के लिए चावल के आटे के घोल के साथ भांग या भंग्जीरा के दाने और हरा धनिया मिश्रित किया जाता है । तैयार मिश्रण को मालू के पत्ते पर फैलाकर चूल्हे पर रखे वर्तन में डाले पानी की भाप में इन्हें पकाया जाता है । पत्तों पर घी परत चढ़ाई जाती है ताकी सरलता से पकने के बाद शकोली अलग हो सकें । धूप में सुखाने के बाद सरसों के तेल में तला जाता है और इसे मुड़े की साथ खाना अत्यंत स्वादिष्ट होता है । मुड़े के साथ अखरोट की गरी भी मिश्रित की जाती है । दिवाली के अवसर पर हर घर में मुड़ा और शाकोली बनती है और हर विवाहिता के मायके से मुड़े का हिस्सा जरूर भेजा जाता है ।

23. **चिन्चावाली**: नवजात शिशु के नामकरण के समय भीगे चावल और गुड़ का मिश्रित मिष्ठान बनाया जाता है जिसे चिन्चावाली कहते हैं । नामकरण की रस्म पूरी होने के उपरांत उपस्थित परिवार जनों में वितरित की जाती हैं । साथ में अखरोट के पांच या सात दाने भी निर्धारित दिशा की ओर फैंके जाते हैं जिन्हें बाद में उपयुक्त स्थल पर बीज कर अखरोट का पौधा उगाया जाता है और भविष्य में फलदायक पेड़ बनता है ।

ग. वर्ष भर के लिए एक बार प्रसंसाधित खाद्य पदार्थ :

1. **भुनी मक्की के सातु:** सदियों से सातु हटियों का पसंदीदा व परम्परागत भोज्य पदार्थ रहा है जिसे खेतों में अधपकी मक्की से तैयार किया जाता है । यदपि किसी समय लोग जौ से भी सातु बनाते थे लेकिन अब अधिकतर मक्की के सातु का ही सेवन करते है । मक्की के सातु दो प्रकार से बनाए जाते है- भुनकर या फिर उबाल कर । खेत में लगभग पकने वाली मक्की को काटकर इसका आवरण अलग करके बड़ी-बड़ी छालियाँ छांटकर एक ढेर को घर के कोने में एकत्र किए जाता है और हर दिन शाम को पड़ोसियों के साथ मिलकर छली से दाने अलग किये जाते हैं । पडोसी सभी मिलकर एक साथ एक ही भाठ में बारी बारी से सातु बनाते हैं क्योंकि सातु बनाना अति श्रम साध्य कार्य हैं । भाट में भुनने की बाद इसे सुखाया जाता है और फिर आवश्यकतानुसार खल्टू या कोटाला में भर कर पानी के घराट में पीसवाया जाता है । इसका सेवन लस्सी या दही में पताला घोल बनाकर अमरीले, टिम्बुर या फिर चुल्लू , अदरक, आलू, अरबी की चटनी के साथ किया जाता है ।
2. **उबली मक्की के सातु:** इस प्रक्रिया में मक्की जयादा कच्ची ही उपयोग की जाती हैं और इन्हें खेतों से तोड़कर इनका आवरण हटा कर भाट में लगे बड़े ताम्बे के भडुओं में डाला जाता है और उपर से अच्छी तरह धक् लिया जाता है । एक साथ तीन-चार भाट भी जलाए जा सकते हैं और

एक साथ सबमें मक्की उबाली जाती हैं I जब पूरी तरह से मक्की उबल कर तैयार हो जाती हैं तो उन्हें वर्तन से निकाल कर छलियों से दाने अलग किये जाते हैं और उन्हें धूप में सुखाया जाता है I सुखाने के पश्चात् इन्हें आवश्यकात्नुसार घराट में पिसाया जाता है जिसे लस्सी, दही और दूध के साथ भी खाया जाता है और इसके साथ चटनी, गुड़ का सेवन इसे और स्वादिष्ट बनता है I यह भुने सातु की अपेक्षा खाने में थोड़ा मीठा होता हैं लेकिन इसे रोगी व्यक्ति को अधिक लाभकारी नहीं माना जाता और इसे तेज धूप में बैठकर खाना उपयुक्त माना जाता है I

3. **जौ के सातु:** जौ के सातु केवल भुनकर बनाए जाने का प्रचलन रहा है लेकिन अब इनका उपयोग बहुत कम हो गया है। विषम भौगोलिक परिस्थिति के कारण अनाज की यहाँ सदैव ही दरकार रही है और रवी के फसलों में जौ ही एक मात्र ऐसी फसल थी जो सर्वप्रथम खेतों में पक कर तैयार होती थी इसलिए अन्न की कमी को पूरा करने के लिए जौ की उपयोगिता का प्रचलन रहा I जौ के सातु बनाने का दूसरा कारण यहाँ स्थानीय स्तर पर बनाई जाने वाली सूर में इसकी आवश्यकता भी थी जिसमे इन सातु का कदाचित प्रयोग किया जाता था चूँकि इसमें बहुत अधिक स्टार्च होता है I जौ के भूसे से दाना अलग करने के बाद उन्हें धूप में सुखाया जाता है और फिर ओखल में हल्का कूट कर बाहरी छिल्का उतारा जाता है जिसे छड़ना कहते हैं I छड़े हुए जौ को फिर चूल्हे पर किसी बड़ी कढ़ाई में भुना जाता है और बाद में घराट में पीसाने हेतु ले जाने से पहले धूप में फिर सुखाया जाता है I घराट नें पिसाने के बाद सातु तैयार होते है और इन्हें लस्सी, दही और चटनी या मसाले के साथ खाया जाता है I

निष्कर्ष: गिरिपार सिरमौर में खाद्य व पेय परम्परा सदियों से उत्साहवर्धक, स्वास्थ्यवर्धक, पौष्टिक और प्राकृतिक रूप से विज्ञान आधारित रही है इसमें कोई संशय नहीं है I खाद्य पदार्थों को लम्बे समय तक संरक्षित करने की अन्नत प्रसंसाधन विधियां उपयोग में रही है जो न केवल भोजन की पौष्टिकता को बनाए रखने में सहायक है बल्कि मौसम, जलवायु और उत्सवों तथा समारोह अनुरूप सार्थकता भी पुष्ट होती है I चूँकि इस महत्वपूर्ण पहलू पर अभी शोध परक लेखों की अति आवश्यकता है ताकि उन प्राचीन प्रचलित रीति-रिवाजों और समृद्ध परम्पराओं को बचाया जा सकें जिस आधार पर आज हमारी संस्कृति का महल खड़ा है।

ग्राम झकांडो
गिरिपार क्षेत्र, उप-तहसील रोनहाट
जिला सिरमौर, हि० प्र०

सुतोउले बनाने के लिए हस्त निर्मित
काष्ठ खांचा

उलोऊलै

गिरीपार सिरमौर की हाटी जनजातीय संस्कृति के परम्परागत लोक परिधान व आभूषण (प्रकाशित शोध पत्र)

भौगोलिक व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हिमाचल प्रदेश के जिला सिरमौर का गिरीपार क्षेत्रा हाटी समुदाय की कुल चौदह उप-जातियों का मूल निवास स्थान है, जिसका कुल भौगोलिक क्षेत्राफल 1299 वर्ग किलोमीटर है। यह 154 ग्राम

पंचायतों, नौ तहसीलों व उप-तहसीलों और चार विधानसभा क्षेत्रों को समेटे हुए है। 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी कुल जनसंख्या तीन लाख से अधिक है[ii]। गिरीपार सिरमौर के पूर्वी भाग के साथ समरूप भौगोलिक व सांस्कृतिक क्षेत्रा जौंसार-बाबर की जौंसारा जनजाति निवास करती है[iii]। चूँकि जौंसार-बाबर और गिरीपार सिरमौर प्राचीन समय से एक जैसी भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और नृवंशीय पृष्ठभूमि से बंधे हैं[iv]। इसलिए इसी आधार पर गिरीपार सिरमौर के हाटियों को भी 56 वर्षों के शांतिपूर्वक आन्दोलन के चलते 4 अगस्त, 2023 को भारत सरकार द्वारा जनजाति का दर्जा प्रदान किया गया है[v]। राजतान्त्रिक काल से जौंसार-बाबर और गिरीपार क्षेत्रा सिरमौर रियासत के भाग थे। कालसी में गतिविधियों का महत्वपूर्ण केंद्र रहा होगा, तभी मौर्य शासक अशोक महान ने यहाँ शिलालेख स्थापित किया था, जो आज भी विद्यमान है। दिसम्बर 1815 ई. में सगौली की संधि के उपरांत सिरमौर रियासत के जौंसार-बाबर और क्यारदा दून (पांवटा-साहिब) के क्षेत्रा रुपये 50,000/- युद्ध क्षतिपूर्ति में अंग्रेज़ी सरकार के अधीन चले गए। 1833 ई. में सिरमौर के तत्कालीन शासक फ़तेह प्रकाश ने रुपये 20,000/- देकर क्यारदा दून का क्षेत्रा तो वापिस प्राप्त कर लिया लेकिन जौंसार-बाबर के क्षेत्रा में अंग्रेजी सरकार ने आर्थिक स्वार्थ व चीन की तरफ राज्य विस्तार की संभावनाएं देखते हुए वापिस नहीं किया। तत्कालीन जौंसार-बाबर के ब्रिटिश प्रशासक कैप्टन ब्रिच के आदेशानुसार रोज़ और रोबर्ट्सन ने दस्तूर-उल-अमल तथा वाज़िब-उल-अर्ज़ में स्थानीय लोक मान्यताओं व परम्पराओं को संकलित किया और यही अभिलेख पुष्ट सरकारी दस्तावेज़ स्वीकृत हुए[vi]।चूँकि हाटियों और जौंसार के मध्य रोटी-बेटी का रिश्ता कायम है[vii]I इसलिए ये ब्रिटिश कालीन अभिलेख हाटियों की लोक परम्पराओं व संस्कृति को भी दर्शाते हैं। वर्ष 1931 की राजस्व रिपोर्ट, सिरमौर गजेटियर 1904 व 1934 और सिरमौर राज्य प्रशासनिक रिपोर्ट 1943 में गिरीपार के हाटियों की जौंसार-बावर समरूप व्यवस्था दर्ज की गई है[viii]। गिरीपार सिरमौर और जौंसार-बावर के क्षेत्रां की संयुक्त तहसील जौंसार बावर के कालसी में थी, जहाँ दोनों क्षेत्रों के लोग एक लोक संस्कृति में नज़र आते थे[ix]। दोनों क्षेत्रों के दर्जनों गाँव के नाम एक हैं और आज भी इनके मध्य दाईचारा-भाईचारा विद्यमान है। मेले, पर्व, त्यौहार व उत्सव एक जैसे हैं इसलिए वस्त्रा-आभूषण भी एक जैसे हैं[x]। यद्यपि 1815 के पश्चात् दोनों क्षेत्रों में प्रशासनिक व्यवस्था भिन्न थी, राजस्व इकाइयां समरूप रहीं और लोक आचार-व्यवहार के नियम व परम्पराएं भी समतुल्य फलती-फूलती रहीं। वर्ष 1967 में गिरीपार के भाटों का मशहूर गाँव टिटीयाणा के चौंतरे में आयोजित महाखुमली में सम्पूर्ण गिरीपार के स्याणों, सदर स्याणों, जैलदारों ने यह निर्णय लिया कि महिलाएं नियमित दिनचर्या में लुगड़ी व कीमती आभूषण पहनने के लिए वाध्य नहीं होंगी, वे स्वेच्छा से सलवार कमीज भी पहन सकती हैं[xi]।

गिरीपार सिरमौर के हाटी समुदाय के लोकपरिधान व आभूषण की ऐतिहासिकता, मौलिकता, लोकप्रियता, उपियोगिता व निर्माण की विधियाँ, तकनीक तथा संरक्षण शेष सिरमौर से भिन्न हैं। यहाँ के परिधानों और आभूषणों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये स्वाभाविकता व सहजता से उपजे व विकसित हुए हैं और आज भी इनकी मौलिकता विद्यमान है[xii]। गाँव के दर्जी, सुनार, काश्तकार, रंगसाज व बाजगी आज भी अपने परम्परागत व्यवसाय जीवित रखने में इसलिए भी सक्षम हैं कि यहाँ लोक उपियोगिता के परिधान व आभूषण स्थानीय कारीगरों से बनवाना पसंद करते हैं।

आभूषणों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इन्हें स्थानीय स्तर पर लोक परम्परागत विधि व तकनीक से निर्मित किए गए और सरल कढ़ाई व नक्काशी का ही उपयोग किया गया क्योंकि यहां विकसित साधनों का अभाव रहा। मशराली (बूढ़ी दियाली) में बुडियाचू द्वारा किया जाने वाला बुढासिंह नृत्य और अनुभवी पक्की उम्र के शौक़ीन हाटियों द्वारा गी नृत्य, डांगरा व तलवार नृत्य पुरुषों द्वारा चौल्णा पहन कर ही किया जाता है। महिलाओं द्वारा आभूषण नियमित रूप से नहीं पहने जाते हैं, केवल विवाहिता द्वारा नाक की तिल्ली लगाना अनिवार्य माना जाता है, जिसे सुहाग कहते है[xiii]। जबकि लुगड़ी, मैखली व कुरती महिलाओं द्वारा उत्सव के दौरान ही पहने जाते हैं।

परिधान

गिरीपार सिरमौर के लोकपरिधान विशुद्ध रूप से मूर्त हाटी संस्कृति के संवाहक हैं। पुरुष परिधानों में लोईया, सुथोण, झागा, टोपे, खान्दटा, तागड़े आदि परम्परागत हैं जिसमें लोईया व सुथोण ऊन से झागा, टोपे, तागड़े सूत से बनाए जाते हैं। महिलाएं लुगड़ी (घाघरे की तरह), मैखले (ऊपरी पोषक), ढाटू (सिरपर ओढ़ने वाला वस्त्रा), कुरती (ऊपरी पोषक), गाचे (कमर बंध) आदि पहनती हैं। कुरती ऊनी वस्त्रा है बाकी सब सूती वस्त्रा बनाए जाते हैं। बर्फ पर चलने के लिए विशेष प्रकार के मौजे बकरी की ऊन से बनाए जाते हैं जिन्हें 'खुरशे' कहते हैं ये काफी गर्म होते हैं। नवजात शिशु के लिए खिल्की, पोएतरी, टाला आदि इस तरह बनाया जाता है जो पहनाने में सुविधाजनक हों ताकि स्नान के पश्चात् तुरंत पहनाया जा सके। अविवाहिता लड़कियाँ भी ढाटू पहनती हैं लेकिन लुगड़ी और मैखले पहनने का अधिकतर प्रचलन विवाहित महिलाओं में रहा है। पुरुष परिधान चौल्णा (टखने तक लम्बा कोटनुमा) तथा महिला परिधान लुगड़ी, कुरती व मैखले का प्रयोग विशेष कर पर्वों, मेलों, त्योहारों और उत्सवों में ही किया जाता है[xiv]।

पुरुष परिधान

लोईया : घर में तकली से पर्याप्त ऊन कताई का 'ओएरण' (विशेष तकनीक जिसमें ऊन के धागे जमीन से गड़े लकड़ी के खूंटों से विधि अनुसार लपेटे जाते हैं) उपरान्त यह ऊनी वस्त्रा स्थानीय बुनकर द्वारा तैयार किया जाता है। बुनकर कड़ी मेहनत से लकड़ी के राच्छ (बुनाई का यंत्रा) से ऊनी धागे ताना-बाना में परस्पर बुनकर एक महीन पट्टी तैयार करके रोल में लपेटता है। सिलाई हेतु यह पट्टी मापानुसार काटी जाती है जिसमें निचला हिस्सा ज्यादा चौड़ा और ऊपर वाला हिस्सा संकरा होता है। काटी गयी पट्टियों को 'साखी' कहते हैं और 8, 10, या 12 साखियों को इस प्रकार जोड़ा जाता है कि पहली पट्टी का अंतिम सिरा दूसरी पट्टी के अग्रभाग से सटा हो लेकिन सिलाई के समय दो इंच दूसरे वाली पट्टी खुली रहे ताकि सम्पूर्ण जोड़ उपरान्त परत दर परत प्रतीत हों। कंधे और कालर में दोहरी पट्टी प्रयोग की जाती है ताकि सभी जोड़ों को दबाया जा सके और ठहराव के लिए मजबूती भी मिल सके। पीठ वाले आंतरिक भाग में इसी पट्टी का एक अलग टुकड़ा जोड़ा जाता है जिसे माला कहा जाता है। दोनों कन्धों के साथ ही अन्दर की तरफ दो जेबें बनाई जाती हैं जिन्हें गुज़ा कहते हैं। प्रयोग करने से पूर्व इसे गुत्तु (लकड़ी का बना बड़ा टब) में गर्म पानी व कवांरपाटा (जंगली एलोबेरा) के साथ पैरों तले रौंदा जाता है ताकि सतह पर कोमलता और सफाई उभर सके। इस ऊनी पोषक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे ओढ़ने के उपरान्त वर्षा और बर्फ का भी असर नहीं होता है। इसमें भुजाएं डाले बिना ही ओढ़ा जाता

हैं। केवल वर्षा और बर्फबारी के समय कमर पर रस्सी बांधकार इसमें भुजाएं डालकर पहना जाता है और एक पीढ़ी तक यह टिकाऊ माना जाता है[xv]।

सुथोण : इसे ऊनी और सूती दोनों प्रकार से निर्मित किया जाता है। ऊनी सुथोण केवल बर्फबारी और ठोड़ा खेल में प्रयोग किया जाता है। इसे भी लोईये की तरह ही बुनकर द्वारा ऊन की कताई उपरान्त राच्छ में पतली पट्टी के रूप में तैयार किया जाता है और दर्जी द्वारा सिला जाता है। पहनने के लिए कमर पर डोरा (नाड़ा) लगाया जाता है। ठोड़ा नृत्य व खेल में घुटने से नीचे तीर के प्रहार से बचने के लिए ऊनी सुथोण के अन्दर कई परतों में कपड़े की पट्टी लपेटी जाती है। नियत दिनचर्या में सूती सुथोण ही प्रयोग किया जाता है[xvi]।

खिन्दटा : पुराने लोईये में फटे हुए स्थान पर सुई धागे से सिलाई उपरान्त मोटे कपडे की कई छोटी-बड़ी मज़बूत टालियाँ (चकोर आकार, कपड़ा एवं चिथड़ा) लगाई जाती हैं और इस भारी भरकम परिधान को 'खान्दटा' कहते हैं जिसका प्रयोग सौन्दर्य के लिए नहीं बल्कि भारी कार्य में उपयोगिता हेतु पीठ पर धारण किया जाता है।

तागड़ी : आतंरिक वस्त्र गौन्च्छा को पहनने के उद्देश्य से डोरी और पट्टीनुमा परिधान बहुत महत्वपूर्ण होता है जिसकी महत्ता इस प्रचलित लोक कहावत से समझी जा सकती है कि 'तागड़ी और पगड़ी सदैव संभाल कर रखनी चाहिए।' यद्यपि इसका प्रचलन विलुप्त हो गया है, यह परम्परागत हाटी परिधान कमर पर धारण किया जाता है। इसमें लगी डोरी को अंगोच्छा में पिरोया जाता है और टांगों के बीच से कपड़े की पट्टी पुनः इसी तागड़ी में लपेटी जाती है[xvii]।

टोपी : हाटी पुरुषों में दो प्रकार की टोपियों का प्रचलन रहा हैं- मूल टोपी को 'चूहा टोपी' कहते हैं जो गोलाकार उलटे कटोरे की तरह सिर पर ओढ़ी जाती है और अधिकतर सफेद सूती कपड़े से स्थानीय दर्जी द्वारा सिली जाती है। दूसरी टोपी का प्रचलन बहुत बाद में हुआ जिसे सिरमौरी टोपी के नाम से जाना जाता है और यह दोनों तरफ नुकीले सिरों व मध्य में गोलाकार सिली जाती है। आज से कुछ वर्ष पहले टोपी पहनना शान माना जाता था लेकिन अब इसकी लोकप्रियता काफी कम हो चुकी है। अब केवल गाँव के बुजुर्ग लोग ही यदा-कदा टोपी पहने नज़र आते हैं।

झागा : पुरुषों द्वारा शरीर के ऊपरी हिस्से में पहना जाने वाला परिधान सूती कपड़े से तैयार किया जाता है जिसका प्रचलन दो रूपों में विद्यमान हैं- लंबा झागा और छोटा झागा। लंबा झागा घुटनों तक सिलाया जाता और अधिकतर बुजुर्ग या गणमान्य व्यक्ति इसका उपयोग करते हैं जबकि छोटा झागा घुटनों से काफी पीछे तक ही सिलाया जाता है और इसका उपयोग नौजवानों में अधिक है। दोनों प्रकार के झागे कालर या बिना कालर के सिलाए जाते हैं जिसके दोनों बगल में 'खीसे' (जेब) लगे होते हैं।

चौलणा : यह विशेष परिधान सफ़ेद सूती कपड़ें में बनाया जाता है और इसका प्रयोग पर्वों, मेलों, त्यौहारों तथा उत्सवों में केवल नृत्य हेतु किया जाता है। इसे बनाने में नौ मीटर से भी अधिक कपड़े की आवश्यकता होती है और आगे से यह बटनरहित खुला परिधान है। बाजुएँ डालकर इसे पहना जाता है और यह टखनों तक लम्बा बना होता है। घुटनों तक की लम्बाई के इसी परिधान को 'चौल्टू' कहते हैं। इसे कमर पर बांधने के लिए सूती डोरा लगाया जाता है जिससे इसकी सुन्दरता और पहनावे में आकर्षण

झलकता है। इसके पीठ वाले भाग में वर्गाकार क्षेत्रा में सुन्दर कढ़ाई की जाती है। इसके कालर, बाजू के सिरे और सभी किनारों पर रंग-बिरंगी पट्टियाँ जड़ी जाती हैं। चौलणा पहने नृत्य करते हुए हाथ में तलवार या डांगरा लिया जाता है। जिसे चौलणा नृत्य कहा जाता है[xviii]।

महिला परिधान

लुगड़ी : जिस प्रकार पुरुषों में चौलणे का प्रचलन रहा है इसी प्रकार हाटी महिलाओं में लुगड़ी की लोकप्रियता है। घाघरानुमा यह परिधान कमर से नीचे वाले हिस्से में पहना जाता है और पैरों तक लम्बा होता है। वयस्क महिला को शानदार लुगड़ी सिलाने के लिए 6 से 8 मीटर तक कपड़े की आवश्यकता होती है जिसमें 40 से 56 आयताकार तहों को परस्पर जोड़कर बनाया जाता है, ताकि निचले हिस्से में फैलाव अधिक हो और कमर की तरफ संकरा बने, जिन्हें 'लूड़ी' कहते हैं। इसमें कमर पर बांधने के लिए कपड़े का डोरा लगा होता है। लुगड़ी के आतंरिक भाग में निचले सिरे से लगभग आधा फुट ऊपर तक पतला कपड़ा सिला जाता है जिसे 'संजाब' कहते हैं जिससे इसकी दिखावट मजबूत बने और सिलवटों रहित सपाट रूप से शरीर पर ठहर सके। जहाँ संजाब का आंतरिक जोड़ आता है ठीक उसी जगह बाह्य हिस्से में लगी कढ़ाईदार चौड़ी पट्टी, जिसे 'फीता' कहते हैं, इसकी खूबसूरती को और अधिक बढ़ाती है। महंगे कपड़े से निर्मित लुगड़ी केवल पर्वों, मेलों, त्योहारों तथा उत्सवों में ही पहनी जाती है, सामान्य दिनचर्या में केवल हल्के सूती कपड़ों से निर्मित लुगड़ी का ही प्रयोग किया जाता है[xix]। वर्ष 1967 में हुए निर्णय में छूट देने के उपरांत गिरीपार की महिलाएं सामान्य दिनचर्या में सलवार कमीज प्रयोग करती हैं।

मेखली : यह लुगड़ी के साथ ऊपरी हिस्से में पहना जाने वाला पारंपरिक परिधान है। अधिकतर इसे लुगड़ी के साथ कपड़े के रंग का मेल करके ही जोड़े में सिलाया जाता है। इसकी बनावट साड़ी के साथ पहने जाने वाले ब्लाउज की तरह दिखती है लेकिन यह इससे भिन्न है। यह कमर से काफी नीचे कूल्हों तक लम्बा होता है। इसकी बाजुएँ पूरी कलाई तक बनी होती हैं और कालर लगा होता है। इसके अग्रभाग में लगे बटन और बटन वाले हिस्से में कढ़ाईदार डिजाइन इसे बहुत सुन्दर और आकर्षक बनाता है। इसे बगल वाले दोनों हिस्सों पर कूल्हों के समीप घुमावदार या त्रिभुजाकार हल्का कटाव दिया जाता है[xx]।

कुरती : लुगड़ी के साथ ऊपरी हिस्से में पहना जाने वाला पारंपरिक ऊनी परिधान 'कुरती' है जिसमें भेड़ की ऊन से बुनी सुनहरी पट्टी की सिलाई की जाती है। यह कमर से काफी नीचे कूल्हों तक लम्बी सिली जाती है। इसकी बाजुएँ कलाई तक बनी होती हैं और चौड़ा कालर लगा होता है। इसके अग्रभाग में लगे बटन वाले हिस्से में कढ़ाईदार डिजाइन इसे बहुत सुन्दर और आकर्षक बनाता हैं। इसके बगल वाले दोनों हिस्सों पर कूल्हों के समीप घुमावदार या त्रिभुजाकार हल्का कटाव दिया जाता है। यह विशेषकर सर्दी में पहने जाने वाला परिधान है[xxi]।

ढाटू : परंपरागत परिधान में सम्मिलित चार 'फुरू' (किनारें) वाला वर्गाकार परिधान है, ढाटू जिसे विकर्ण आकार में तह करके त्रिभुजाकार रूप में पहना जाता है। दो फुरुओं को जोड़ने वाला भाग पीठ की तरफ केशों की दिशा में और शेष दोनों सिरे माथे के चारों ओर लपेट कर पिछले हिस्से के ऊपर हल्की गाँठ द्वारा परस्पर बांधे जाते हैं। इसके मध्य से थोड़ी आगे लगी कढ़ाई स्वतः ही पहनने के पश्चात्

माथे के ठीक ऊपर आती है जिससे मुखमंडल की सुन्दरता बढ़ती है। इस परिधान की एक और विशेषता यह है कि इसकी तह में परिवर्तन करके किसी भी तरफ से इस्तेमाल किया जा सकता है। कई शौकीन महिलाएं ढाटू के चारों फुरुओं पर गुच्छीनुमा रंगीन धागों का झूमर जड़ती हैं ताकि इसकी सुन्दरता को बढ़ाया जा सके। अक्सर बुजुर्ग महिलाएँ सफ़ेद व काला ढाटू पहनती हैं जबकी वयस्क विवाहित महिलाएं भड़कीला रंग पसंद करती हैं। अविवाहित लड़कियों में भी इसे पहनने का प्रचलन है लेकिन विवाहिता सदैव ही अपने सिर पर इसे ओढ़े रहती हैं। उनका नंगे सिर रहना अशुभ माना जाता है। देवकार्यों तथा शोक प्रकट करने के दौरान ढाटू को महिला द्वारा सिर पर धारण करना अनिवार्य माना जाता है[xxii]।

गाची : कमर पर बांधे जाने वाला लंबा पाटीदार कपड़ा 'गाची' कहलाता है, जिसका उपयोग केवल प्रसूता, बुजुर्ग या फिर बीमार महिला ही करती है। यह साधारण कपड़े की लंबी पट्टी होती है जिसे परत-दर-परत कमर पर लपेटा जाता है और अंतिम छोर इसके ऊपरी भाग से इसके अंदर ही टिकाया जाता है। गाची स्वास्थ्यवर्द्धक है।

शिशु परिधान

शिशु परिधानों में खिल्की, टाला, पोएतरे आदि मुलायम सूती वस्त्रों से बनाए जाते हैं, जिन्हें सरलता व सुगमता से प्रयोग किया जा सके। इनकी विशेषता यह है कि इसमें किसी प्रकार की कढ़ाई नहीं की जाती है ताकि शिशु की त्वचा को हानि न पहुंचे। 'खिल्की' एक बटनरहित अग्रभाग से खुला वस्त्रा है जिसके मध्य भाग में छोटे कपड़े की डोरी से बांधने का प्रावधान रहता है। 'पोएतरे' तिकोना मुलायम मोटा वस्त्रा का टुकड़ा है जिसे प्रयोग किए गए कपड़ों से हाथ द्वारा सिला जाता है। त्रिभुजाकार टुकड़े का एक भाग शिशु की पीठ की तरफ लपेट कर एक कोना दोनों टांगों के मध्य से नाभि के नीचे तक पहुँचाया जाता है और शेष दो कोने भी बगल से लपेटते हुए तीसरे सिरे के साथ हल्की गाँठ देकर बाँध दिया जाता हैं ताकि इधर-उधर न खिसके। 'टाला' शिशु के सम्पूर्ण शरीर के बाह्य भाग में लपेटने वाला वर्गाकार या आयताकार मोटा मुलायम कपड़ा होता है ताकि शिशु को सर्दी से बचाया जा सके। इसका मध्य भाग शिशु के सिर के पिछले हिस्से से सटाकर पीठ की ओर से पेट की तरफ लपेटा जाता है और पाँव तक फैलाया जाता है ताकि शरीर का कोई भी अंग सीधा सर्दी के संपर्क में न आए। शिशु के कपड़े की एक विशेषता यह होती है कि इन्हें घर में प्रयोग किए गए पुराने कपड़ों से ही निर्मित किया जाता है ताकि शिशु की त्वचा को कीटाणुओं के संक्रमण से बचाया जा सके[xxiii]।

अन्य घरेलू उपयोगी ओढ़ने व बिछोने के वस्त्र

अन्य घरेलू उपयोगी वस्त्रों में खुरशे, खारचा, ढाबले, काम्बले, दोअड़ तथा बकराली आदि हैं। आज से 50 वर्ष पूर्व किसी भी घर में रजाई व गद्दे प्रयोग में नहीं थे केवल ऊन व सूत से स्थानीय कारीगरों व बुनकरों द्वारा तैयार किए गए वस्त्रा ही घरों में मौसम के अनुसार इस्तेमाल किए जाते थे।

खुरषे : खुरशे बकरी के बाल से हस्तनिर्मित मौजे होते हैं, जिन्हें केवल बर्फबारी के समय पहने जाते हैं। जिसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्हें पहनने से बर्फ में भी चलने पर पांव सूखे रहते हैं और सर्दी का एहसास कतई नहीं होता है। इसके बाहर जूते पहनने की भी आवश्यकता नहीं होती है। बर्फबारी में चलते हुए इसका प्रयोग हाटियों द्वारा किया जाता रहा है ताकि पशुओं को चारा इकठ्ठा करने में कठिनाई न हो। बर्फ में लम्बी यात्रा के दौरान भी इन्हें इस्तेमाल किया जाता है। इसके नाड़ी की तरफ

वाले भाग में कसकर बांधने के लिए पतली कपड़े की डोरी लगी होती है ताकि बर्फ या पानी के रिसाव को पाँव की तरफ रोका जा सके[xxiv]।

खारचा : खारचा भी बकरी के बाल से निर्मित चट्टाईनुमा बिछौना है जिसे कताई के उपरांत लम्बी डोरियों को परस्पर राच्छ में बुनकर बनाया जाता है। इसे गर्म पानी तथा कवांरपाठे के घोल में पैरों तले रौंद कर मुलायम तथा मजबूत किया जाता है। इसके पश्चात् ही इसे बिछौने के तौर पर प्रयोग में लाया जाता है। यद्यपि इसकी सतह खुरदरी होती है इसलिए इस पर हर कोई बैठना या सोना पसंद नहीं करता लेकिन निचली सतह से आने वाली सर्दी को रोकने का यह राम बाण है। इसके एक सिरे में डोरियों को परस्पर पिरोकर श्रृंखलानुमा डिजाइन दिया जाता है जिससे यह भी सुनिश्चित होता है कि यह भाग सिर की तरफ प्रयोग किया जाता है[xxv]।

ढाबली : ढाबली ऊन की कताई के उपरांत दो चौड़ी पट्टियों को परस्पर सिलकर निर्मित की जाती है। इसे भी लोईये की तरह ही पैरों तले गर्म पानी व रीठा के घोल में देर तक रौंदा जाता है ताकि ऊन और कच्चे सूत के सभी रेशे परस्पर सघनता से जुड़ जाएं और मजबूती व कोमलता प्रदान हो सके। इसे धूप में सुखाने के बाद सोते हुए ओढ़ने के लिए उपयोग किया जाता है[xxvi]।

काम्बले : काम्बले घरेलू उपयोगी वस्त्रों में सबसे मजबूत व बड़ा वस्त्रा है जिसके नीचे 5 से 6 लोग आराम से सो सकते हैं। यह ऊन तथा कच्चे सूत के धागे के संयुक्त मिश्रण से निर्मित की जाती है। इसमें 2 फुट चौड़ी, चार से छह बुनी हुई पट्टियों को परस्पर जोड़कर सिला जाता है। लकड़ी के बने गुत्तु (लकड़ी का बड़ा टब) में दो या तीन पुरुषों द्वारा पैरों तले घंटों तक रौंदा जाता है ताकि ऊनी तथा सूती रेशे परस्पर सघनता से मिश्रित हों और सतह समतल व कोमल बने, साथ ही मजबूती प्रदान की जा सके। अनुभवी हाटी बताते हैं कि एक पीढ़ी में केवल एक काम्बली बनाना किसी अदम्य साहस से कम नहीं था और यह वस्त्रा कई पीढ़ियों के लिए बनता था। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह सर्दी में अत्यधिक गर्म और गर्मी में ठंडी रहती है इसलिए इसे हर प्रकार के मौसम में प्रयोग किया जाता है। बुजुर्गों का मानना है कि बर्फबारी वाली रात में भी इसका एक छोर बिछौने के रूप में और एक छोर ओढ़कर सोया जाए तो पूरी रात आराम से कट सकती है और सर्दी तथा गीलेपन का कोई अहसास नहीं होगा[xxvii]।

दुअड़ : ढाबली को दोहरा करने से दुअड़ बनती है। एक ही पल्ला दोहरा होने से इसका नाम दुअड़ पड़ा है। इसे ऊन तथा कच्चे सूत का प्रयोग करके बनाया जाता है। ढाबली की तरह इसे भी कताई व बुनाई उपरांत गुत्तु में पैरों तले रौंदा जाता है, सुखाने के उपरांत इसके लम्बे पल्लों को दोहरा किया जाता है लेकिन इनकी परस्पर सिलाई नहीं की जाती बल्कि दोनों छोरों को लड़ीनुमा धागों की श्रृंखला से परस्पर गुंथा जाता है ताकि पल्ले सदैव दोहरे ही जुड़े रहें और झालरनुमा डिजाइन सुन्दरता बढ़ाए। लड़ी नुमा श्रृंखला वाला भाग पैरों की तरफ ओढ़ा जाता है। एक दुअड़ तीन से चार पीढ़ियों द्वारा आराम से प्रयोग में लाया जा सकता है[xxviii]।

आभूषण

गिरीपार के हाटी पुरुषों में केवल कान में नोति (वलय आकार का कर्ण आभूषण) नामक स्वर्ण आभूषण पहनने का प्रचलन रहा है लेकिन इसे भी विरले पुरुष ही पहनते हैं, जिनके कान बींधे होते हैं।

कई पुरुषों में ताम्बे की अंगूठियाँ धारण करने का भी प्रचलन रहा है।29 इसके अलावा किसी तरह के अन्य आभूषण पहनने की परम्परा व शौक पुरुषों के मध्य नहीं रहा है। महिला आभूषणों की बात करें तो कान, नाक, सिर, कलाई, गला, बाजू आदि में सोने व चाँदी के आभूषण पहनने का खूब शौक रहा है। आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लोग कभी-कभी ताम्बे के आभूषणों का प्रयोग करते रहे हैं। अविवाहित हाटी लड़कियां आभूषण नहीं पहनती हैं। विवाह के समय शुभ मूहर्त में दुल्हन के नाक की तीली या फुलि निर्धारित अक्षर से आरम्भ नाम वाली किसी विवाहिता द्वारा पहनाया जाता है और इसे सुहाग लगाना कहते हैं[xxix]। इस रस्म व आभूषण को अत्यंत आवश्यक माना जाता है। बाकी आभूषणों की उपलब्धता सामर्थ्य पर निर्भर करती है, किसी प्रकार की बाध्यता नहीं है। एक वर्ष से कम आयु के शिशुओं को भी चाँदी के कांगणू पहनाए जाने की परम्परा है जिसे ज्यादातर मामा पक्ष से उपहारस्वरूप दिया जाता है।

कर्ण आभूषण

तुंगअल : तुंगल पान के पत्ते के आकार का जोड़ी में स्वर्ण आभूषण है जिसे एक सिरे से हुक द्वारा बींधे हुए कान में लटकाया जाता है। इसमें दोनों तरफ बाह्य भाग में रेखीय आकार का डिजाइन व मध्य में बेल, पत्ती व पुष्पाकार की नक्काशी होती हैं। प्रत्येक तुंगल दो तोले (20 ग्राम) भार का होता है। यह एकमात्रा ऐसा गहना है जिसका प्रचलन पहले की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुआ है[xxx]।

दुरेटू : स्वर्णनिर्मित वलय आकार के ज़ेवर छिद्रित कानों में पहने जाते हैं जिनका अधिकाँश हिस्सा कंधे की तरफ लटका रहता है। कंधे की तरफ वृत्त के आंतरिक भाग में सोने की पतली डंडी को तीन चार बार घुमाकर और कुंडलीनुमा आकार दिया जाता है। कुण्डली के मध्य में दोनों तरफ कीलनुमा डंडी के दोनों सिरों को गढ़ कर फुलाया जाता हैं। यह आभूषण सामान्य तौर पर जोड़े में ही बनता है और प्रत्येक का भार दो तोले (20 ग्राम) से ऊपर होता है। इन पर किसी प्रकार की नक्काशी नहीं की जाती है केवल कुण्डलीनुमा भाग ही इसकी शोभा होती है[xxxi]।

बाली : वलय आकार स्वर्णनिर्मित आभूषण दुरेटू आकार का होता है। इसमें फर्क सिर्फ इतना हैं कि इसकी परिधि बहुत छोटी होती है और आतंरिक भाग में कुण्डली आकार का मुड़ा हुआ हिस्सा नहीं बनाया जाता। इसे भी जोड़ी में ही बनाया व पहना जाता है। छिद्रित कर्ण में पहने जाने वाला हिस्सा एक हुकनुमा बारीक कुंडा होता है ताकि आसानी से पहना जा सके और खो जाने का भय न रहे।

उतराली : हाटी महिलाओं में कान के निचले भाग से आरम्भ होकर ऊपरी छोर तक क्रम में छिद्रित करने का भी प्रचलन रहा है जिनमें सोने के वलयाकार आभूषण पहनने की परम्परा है जिन्हें उतराली कहते हैं। मुख्य छिद्र पर मुख्य गहना जैसे तुंगल, लुडकू, दुरेटू आदि पहना जाता है और शेष छिद्रों में उतराली पहनी जाती है जिनका आकार कान के निचले भाग से ऊपर की तरफ जाते हुए क्रमानुसार कम होता जाता है। इसमें किसी तरह की नक्काशी नहीं होती, मात्रा कान में फंसाने के लिए एक पतला कुंडा लगा होता है[xxxii]।

लुड़कू : छिद्रित कर्ण से लटकाने वाला जेवर लुड़कू कहलाता है। यह भी जोड़े में निर्मित स्वर्णाभूषण है जिसका प्रचलन हाटी समाज में बहुत बाद में आया। इसे परम्परागत नहीं कहा जा सकता लेकिन अब इसकी लोकप्रियता अधिक हो चुकी है। छोटा झूमराकार का यह गहना उल्टी घंटी की तरह

प्रतीत होता है जिसके निचले हिस्से में गोल दानाकार महीन कण वृत्ताकार छिद्र में स्वछन्द गतिमान रहते हैं और यही इसकी विशेषता है। शेष घंटीनुमा भाग में सुन्दर नक्काशी की जाती है। इसके शीर्ष भाग में हुक या डंडी लगी होती हैं जो छिद्रित कर्ण में जोड़ी जाती है।

नाक के आभूषण

नथ/नाथ : नाथ नाक में पहने जाने वाला परंपरागत स्वर्णनिर्मित गहना है जिसे स्थानीय स्वर्णकार द्वारा वलयाकार में बनाया जाता है। नाक में पहने जाने वाला यह सोने का सबसे बड़ा व भारी गहना है जिसका भार चार तोले (40 ग्राम) से ऊपर होता है। सामान्य तौर पर यह सोने की मोटी वृत्ताकार डंडी होती है इसमें बहुत बारीकी से कलाकृति उकेरी होती है। परिधि आकार की डंडी पर दानेदार बिंदु चारों तरफ आधे हिस्से में अंकित होते हैं। शेष भाग में रेखीय डिजाइन जड़े जाते हैं और दोनों के मध्य तथा सिरों पर डंडी के चारों ओर चूड़ीनुमा रेखाएं उकेरी जाती हैं जिससे प्रतीत होता है कि इसके चारों ओर बहुत पतली सोने की तार लपेटी गई हो। नाक के छिद्रित भाग में लगाने की सुविधा हेतु इसका एक सिरा पतला रखा जाता है जो दूसरे सिरे को कुण्डली आकार में जोड़ता है। नथ का मोटाई वाला भाग नाक के नीचे की तरफ रहता है। इसके भार को टेका देने के उद्देश्य से एक चांदी की जंजीर इसके मध्य में अलग से बाँधी जाती है और दूसरे सिरे में लगा कुंडा कान के समीप संवरे केशों में फंसाया जाता है। मेले, पर्वों और त्यौहारों के अतिरिक्त विवाह में इसे घर की महिलाओं द्वारा पहनना शुभ व मंगलकारी माना जाता है[xxxiii]।

तिली : हाटी महिलाओं द्वारा परम्परागत रूप से पहना जाने वाला यह स्वर्ण जेवर सबसे प्रमुख और अनिवार्य होता है जिसे सुहाग की निशानी के रूप में नाक में सदैव पहने रखना हर विवाहिता का धर्म माना जाता है। स्थानीय सुनार द्वारा शुद्ध सोने की तिली बहुत छोटे सूरजमुखी पुष्प समान गढ़ी जाती है जिसके मध्य में बारीक डंडी नाक के छिद्रित भाग में पहनी जाती है जिसमें नाक के अन्दर की तरफ से चौड़े मुंह वाली कीलनुमा छोटी डंडी द्वारा कसा जाता है ताकि गिरने की सम्भावना न रहे। तिली का मध्य भाग सपाट होता है लेकिन किनारों में पत्तीनुमा नक्काशी उकेरी जाती है जिससे इसकी सुन्दरता को उभारा जा सके। विवाह के दौरान इसे निर्धारित लग्न में दुल्हन को पहनाना अनिवार्य माना जाता है। यदि विवाह का आयोजन किन्हीं अपरिहार्य कारणों से निर्धारित तिथि पर न हो पाए तो दूल्हे के घर से बड़ा बुजुर्ग या दुल्हे के पिता द्वारा दुल्हन के घर जाकर लग्नानुसार तिली दुल्हन को पहनाई जाती है जिसे सुहाग लगाना कहते हैं और इसके पश्चात् सुविधानुसार वैवाहिक कार्यक्रम की अन्य रस्में बाद में आयोजित की जाती हैं।

फ़ोले : तिली का बड़ा रूप फुलि कहलाता है और इसे भी स्थानीय स्वर्णकार द्वारा आवश्यकतानुसार भार व आकार में बनाया जाता है। यह भी सूरजमुखी पुष्प की आकृतिनुमा होती है जिसके किनारों पर पुष्पपंख आकृति का डिजाइन बनाया जाता है। चूँकि सोने की फुलि तिली से ज्यादा भार व आकार में होती है इसलिए यह सामान्य दिनचर्या के उपयोग के लिए नहीं पहनी जाती, इसे उत्सव के अवसरों पर ही पहना जाता है[xxxiv]।

सिर पर धारण करने वाले आभूषण

चाक : संवरे केशों की वेणी के आरंभिक स्थान पर पहने जाने वाला चपटा वृत्ताकार चाँदी या सोने का आभूषण चाक कहलाता है। इस आभूषण के आमने-सामने के दोनों किनारों पर अन्दर की तरफ वाले भाग में दो कुंडलीनुमा हुक लगे होते हैं जिसमें एक तरफ चाँदी की जंजीर और उस जंजीर के दूसरे छोर पर लकड़ी की नुकीली सुई से बंधी होती है जिसे केशों के मध्य से दोनों कुण्डलीनुमा हुकों में फंसाया जाता है ताकि चाक को कस कर वेणी से सटाया जा सके। इस जेवर के दो उद्देश्य हैं, पहला-केशों की वेणी को मजबूती के साथ लम्बे समय तक बांधे रखना और दूसरा-सौन्दर्य में बढ़ौतरी करना।

सुइयाँ : केशों को संवारने में उपयोग होने वाली चाँदी की सुइयाँ हाटी महिलाओं द्वारा कान के बगल वाले दोनों हिस्सों में पहनी जाती हैं जिसमें चाँदी के छोटे झूमर निश्चित अंतराल पर सुई के मध्य जोड़े जाते हैं ताकि गहने की सुन्दरता में वृद्धि की जा सके। दोनों तरफ दो-दो या एक-एक सुइयाँ पहनी जाती हैं, अब इसका प्रचलन कम हो चुका है।

सिस फूल : संवरे केशों के मध्य निकली चीर के अग्रभाग में वृत्ताकार चपटा आभूषण, जो मध्य से उभरा हुआ होता है, सिस फूल कहलाता है जिसे स्थानीय स्वर्णकार मांग अनुरूप सोने या चाँदी में गढ़ते हैं। इसकी परिधि के छोर पर एक चाँदी की जंजीर जोड़ी जाती है जिसके दूसरे सिरे पर केशों में फसाने हेतु हुक लगा होता है जिससे यह सिसफूल माथे के मध्य ऊपरी भाग तक लटकाया जाता है। इसकी बाह्य सतह पर रेखीय डिजाइन बनें होते हैं जिससे यह दिखने में बहुत सुन्दर लगता है। हाटी समाज में यह सिसफूल भी केवल सौन्दर्य प्रसाधन का आभूषण मात्रा है[xxxv]।

गले के आभूषण

हाँसुली : हाटी लोक संस्कृति में पहने जाने वाले आभूषणों में सबसे बड़ा व भारी गहना है 'हाँसुली' जिसे चांदी में गढ़ा जाता है और इसका भार 400 ग्राम से 600 ग्राम तक होता है। इसकी विशेषता यह है कि इसे पहनना सबसे कठिन है चूंकि वलयाकार मोटी पट्टी के मध्य बहुत कम स्थान गले में पहनने के लिए छोड़ा जाता है और इसे केवल कान के ठीक नीचे गर्दन के बगल वाले भाग को तिरछा करके ही पहना जा सकता है। बलयाकार मोटी चपटी-पट्टी के अग्रभाग में सुन्दर व आकर्षक रेखीय व पुष्पनुमा नक्काशी उकेरी जाती है। पट्टी के मोटाई वाले किनारे में निश्चित अंतराल पर चांदी के छोटे-छोटे गुच्छों में गोलाकार कुंडों पर झूमर जड़े जाते हैं और शरीर के गतिशील होने से ये आपस में टकरा कर छन-छन की आवाज करते हैं। हाँसुली के दोनों सिरों पर परिधि के अंतिम छोर की बाह्य तरफ कुण्डली आकार में मोड़ा जाता है ताकि गले में पहनते वक्त आसानी हो[xxxvi]।

गैरा : गले में पहने जाने वाला चांदी के सिक्कों और चतुर्भुजाकार पैंडल से निर्मित गहना हाटी लोक संस्कृति में गैरा कहलाता है। चांदी के सिक्कों में लगे वर्तुलाकार कुंडों को सूत की बनी मोटी डोरी से पिरोया जाता है और इनकी अवस्थिति में स्थिरता हेतु सिक्कों के दोनों तरफ गाँठ लगाई जाती है। दोनों तरफ बराबर मात्रा में पिरोए गए सिक्कों के मध्य चौकोर डिजाइनदार पैंडल लगा होता है। पैंडल के लम्बाई वाली भुजा की अग्रभाग में वृत्ताकार कुंडों से चाँदी के त्रिभुजाकार गुच्छेदार झूमर जड़े जाते हैं जो महिला के चलने से परस्पर घुंघरूनुमा आवाज करते हैं। पैंडल के मध्य भाग में आयत के अन्दर पुष्प पत्ती आकार के डिजाइन बने होते हैं और मध्य में नग जड़ा होता है। गले में पहनने के लिए लगी डोरी के छोर में धागे का गुच्छा बनाया जाता है[xxxvii]।

काच : गले में पहने जाने वाला चौड़ा पंचभुजाकार चांदी का गहना काच कहलाता है जिसमें बटनाकार के छोटे चाँदी के सिक्के आयताकार डिजाइन में जड़े होते हैं और शेष त्रिभुजाकार भाग में पत्तीनुमा नक्काशी उकेरी जाती है। सामान्य तौर पर यह एक भाग या समरूप आकार के दो भागों को परस्पर जोड़ कर भी बनाया जाता है ताकि गले में आसानी से पहना जा सके। गर्दन में बांधने के लिए दोनों छोरों पर सूती डोरी लगी होती है।

शूच : शूच स्थानीय स्वर्णकार द्वारा चांदी से तैयार किया जाने वाला गले का आभूषण है जिसमें दोनों सिरों पर बनी त्रिभुजाकार आकृति में लगे वृत्ताकार कुंडों से कई जंजीरें जुड़ी होती हैं। दोनों छोरों को परस्पर जोड़ने के लिए चाँदी की छोटी जंजीर एक हुक में टिकाई जाती है। जंजीरों के शीर्ष पर लगे त्रिभुजाकार आकृति में भी सघन बिन्दुओं से त्रिभुज समरूप डिजाइन बना होता है। यद्यपि इसके अलग-अलग आकार व डिजाइन प्रयुक्त होते हैं लेकिन सभी में मौलिक समानता है। एक अन्य प्रचलित शूच के अग्रभाग में पान के पत्ते की आकृति का पैंडल लगा होता है जो हुक से जंजीरों के मध्य वाले भाग को जोड़ने वाले शीर्ष भाग पर लटका रहता है। इसमें निश्चित अंतराल पर आयताकार या पंचभुजाकार चाँदी का टुकड़ा लगा होता है जिसके मध्य से जंजीरों को गुजारा जाता है। पैंडल के हुक से उन चांदी के टुकड़ों को बाहरी तरफ से अलग जंजीरों से जोड़ा जाता है जो एक के बाद दूसरी ढीली लचक के साथ झूलती रहती है[xxxviii]।

कलाई व बाजू के आभूषण

धागुला : हाटी संस्कृति में चांदी के मोटे नक्काशीदार कड़ानुमा धागुला दूसरा सबसे बड़ा व भारी आभूषण है जिसे दोनों कलाइयों पर महिला द्वारा धारण किया जाता है। यह कड़े की तरह सम्पूर्ण वलयाकार नहीं होता बल्कि पहनने वाली जगह के दोनों सिरों पर शेर के खुले मुंह आकार का डिजाइन बना होता है। इसके दोनों सिरों के मध्य भाग में सपाट सतह जबकि शीर्ष भाग के दोनों सिरों पर रेखीय, बिन्दुकार व ज्यामितीय रचनाएं उकेरी जाती हैं जिससे इसकी सुन्दरता को चार चाँद लगते हैं[xxxix]।

छलबला : छलबला चांदी का बना परम्परागत वलयाकार चौड़ा आभूषण है जिसे महिलाएं दोनों कलाइयों पर धारण करती हैं। यद्यपि इसके कई अलग-अलग प्रकार प्रयुक्त किए जाते हैं लेकिन इनमें अंतर सिर्फ आकार, डिजाइन व धारण करने की तकनीक का है। एक प्रकार के छलबले में हाथ को समेट कर कलाई तक पहुँचाया जाता है जबकि दूसरी प्रकार में इसका एक हिस्सा खोल कर कलाई में धारण किया जाता है। पहली प्रकार में चारों तरफ चांदी की दानेदार छोटे झूमर वृत्ताकार कुंडों से लटकाएं जाते हैं जबकी दूसरी प्रकार में केवल तीन जगह ही चाँदी के छोटे झूमर और छोटी जंजीर जड़ी होती है। सम्पूर्ण गहने पर इस प्रकार डिजाइन बना होता है मानो इसे पतली चाँदी के तारों को परस्पर लपेट कर बनाया गया हो। इनके किनारे समतल न होकर हल्के छोटे घुमावदार बने होते हैं और बाह्य और आतंरिक सतह भी सपाट न होकर वक्राकार या फिर छिद्राकार की होती है[xl]।

कान्गणु : कान्गणु कलाई पर धारण किए जाने वाले परम्परागत जेवरों में से एक हैं जो बलय आकार जालीनुमा चौड़ा बनाया जाता हैं लेकिन इसकी चौड़ाई आधे ऊपरी भाग की शेष आधे भाग से दोगुनी होती है जो संकरे भाग से धीरे-धीरे दूसरे भाग की ओर बढ़ती जाती है और मध्य में सबसे ज्यादा होती है। इसकी सतह पर सबसे अधिक चौड़ाई वाले स्थल पर छिद्रित पुष्पाकार डिजाइन बना होता है

जिसके मध्य में चमकीला नग जड़ा होता है और शेष सतह पर पत्तीनुमा छिद्रित नक्काशी बनाई जाती है जिससे इसकी सुन्दरता में वृद्धि होती है। कलाई में धारण करने हेतु आधा जुड़ा होता है ताकि यह सरलता से घूम सके[xli]।

स्वामित्व सम्बन्धी परम्परा : लोक परिधानों व आभूषणों का हाटी लोक साहित्य में उल्लेख मिलता है। सैंकड़ों लोक गीतों व गाथाओं में ढाटू, लोईया, सुथोण, गैरा, कान्गणु, तिलि, फूलि आदि का छंद मिलाने के लिए प्रयोग किया जाता है। लोक परिधान व आभूषण स्त्रा का निजी धन माना जाता है और इस पर उसका सम्पूर्ण स्वामित्व होता है। बूढ़ी स्त्रा अपने जीवन भर की पूंजी अपने सबसे बड़े पुत्रा को सौंपती है। यदि संयुक्त परिवार व्यवस्था हो तो परिवार के बंटवारे के समय सभी भाइयों में बराबर हिस्सा जाता है लेकिन महिला अपनी विवाहिता या अविवाहिता पुत्रा को इसमें हिस्सा नहीं देती है। उत्तराधिकारी न होने की स्थिति में स्त्रा के पति के कुल की तरफ से नजदीकी परिवार को स्त्रा धन का लाभ मिलता है लेकिन मायके वाले इस पर कोई अधिकार नहीं जताते हैं।

निष्कर्ष

गिरीपार की हाटी संस्कृति समृद्ध लोक परिधानों और आभूषणों से पोषित है जिसे आदिकाल से विषम परिस्थितियों के थपेड़े भी विलुप्त नहीं कर पाए हैं। यद्यपि बदलते परिवेश व बाह्य संस्कृतियों से सम्पर्क एवं इनके निर्माण, तकनीक, डिजाइन और आकार में कई परिवर्तन आए हैं। इनमें से कई लोक परिधान व जेवर विलुप्त हो चुके हैं और शेष बचे परम्परागत वस्त्रा-आभूषणों का लोक में प्रचलन भी कम हो गया है। हाटियों को जनजाति का दर्जा प्राप्त होने से विलुप्त होने की कगार पर खड़ी विशिष्ट व समृद्ध संस्कृति के खोए गौरव को पुनः स्थापित करने का स्वर्णिम अवसर है जिसके संवर्द्धन व संरक्षण की मुहिम धरातल पर आरम्भ करनी होगी। संस्कृति हमारी मूल है जितना संस्कृति में विविधता को सहजता के साथ वर्द्धन का अवसर प्राप्त होगा उतनी ही हमारे समाज की जड़ें
मजबूत होंगी।

बारू राम ठाकुर
सहायक आचार्य, इतिहास

---

[i] https://hpsirmaur.nic.in

[ii] भारत जनगणना, हिमाचल, सिरमौर, शिलाई, 2011

[iii] डॉ. रूप कुमार शर्मा, सिरमौर दर्पण, गायत्रा प्रकाशन, जालन्धर, 1991

[iv] सिरमौर स्टेट गजेटियर, 1904 भाग-एक, पंजाब सरकार के अधीन, लाहौर में मुद्रित, 1907, कपूर, काहन चंद, गजेटियर ऑफ़ द सिरमौर स्टेट (रिवाइज्ड), 1934, बी. आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन, दिल्ली

[v] सी.जी.-डी.एल.-अ.-05082023-247865

[vi] मेज़र जे.पी. सिंह राणा व रणवीर सिंह तोमर, जौंसार बावर परिचय, प्रियंका ग्राफ़िक, देहरादून, 2008

[vii] एस. के. गुप्ता, सोशल एस्सेस्मेंट रिपोर्ट ऑफ़ सिरमौर डिस्ट्रिक्ट, इंस्टिट्यूट ऑफ़ ट्राइबल स्टडी, हिमाचल प्रदेश वि.विश्वविद्यालय शिमला, 1996

[viii] सिरमौर राज्य की प्रशासनिक रिपोर्ट, 1943-44 प्रिंटर्स लिमिटेड अम्बाला

[ix] कंवर रणजोध सिंह, तारीख ए रियासत सिरमौर, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, 1912

[x] के. एस. सिंह, पीपल ऑफ़ इंडिया, हिमाचल प्रदेश, वॉल, ग्ग्प्ट

[xi] श्री बीर सिंह नम्बरदार, आयु 87 वर्ष, ग्राम शरली, तहसील कमरऊ, सिरमौर, साक्षात्कार तिथि 12 मार्च, 2024

[xii] श्री कुंदन शास्त्रा, आयु 65 वर्ष, ग्राम शरली, तहसील कमरऊ, सिरमौर, हि.प्र., साक्षात्कार तिथि, 25 मार्च, 2024

[xiii] श्रीमती तारा नेगी, आयु 66 वर्ष, ग्राम ग्वाली, तहसील शिलाई, सिरमौर, हि.प्र., साक्षात्कार तिथि, 27 मार्च, 2024

[xiv] वही

[xv] श्री मोहन सिंह, आयु 66 वर्ष, ग्राम झकांडो, शिलाई, सिरमौर, साक्षात्कार तिथि, 12 मार्च, 2024

[xvi] वही

[xvii] वही (7)

[xviii] श्री बंसी राम, आयु 72 वर्ष, ग्राम द्राबिल, तहसील शिलाई, सिरमौर, हि.प्र., साक्षात्कार तिथि, 3 अप्रैल, 2024

[xix] वही (8)

[xx] श्रीमती माया देवी, आयु 64 वर्ष, ग्राम पण्डोग, तहसील संगडाह, सिरमौर, हि० प्र०, साक्षात्कार तिथि, 2 अप्रैल, 2024

[xxi] श्रीमती नारायणी देवी, आयु 63 वर्ष, ग्राम शरली, तह. कमरऊ, साक्षात्कार तिथि, 23 मार्च, 2024

[xxii] वही

[xxiii] श्रीमती अनीता ठाकुर, आयु 40 वर्ष, झकांडो, तह. शिलाई, सिरमौर, साक्षात्कार तिथि, 12 मार्च, 2024

[xxiv] श्री रामभज चौहान, आयु 82 वर्ष, ग्राम चोईमू, तह. शिलाई, सिरमौर, साक्षात्कार तिथि, 10 मार्च, 2024

[xxv] श्री नैन सिंह सिंगटा, आयु 78 वर्ष, ग्राम बौंच, उप तह. रोनहाट, साक्षात्कार तिथि, 18 मार्च, 2024

[xxvi] वही

[xxvii] श्री धोंगु राम कुम्बालू, आयु 91 वर्ष, ग्राम भजावटी, तह. शिलाई, सिरमौर, साक्षात्कार तिथि, 05 मार्च, 2024

[xxviii] वही

[xxix] वही (7)

[xxx] श्री प्रताप सिंह तोमर, आयु 72 वर्ष, ग्राम व तहसील शिलाई, सिरमौर, हि. प्र., साक्षत्कार तिथि, 23 मार्च, 2024

[xxxi] श्रीमती मुन्सो देवी, आयु 58 वर्ष, ग्राम बौंच, उप-तहसील रोनहाट, सिरमौर, हि.प्र., साक्षात्कार तिथि, 1अप्रैल, 2024

[xxxii] अरुण भारद्वाज, 2019, एथ्नोग्राफी ऑफ़ हाटी कम्युनिटी ऑफ़ सिरमौर, हि.प्र., डिपार्टमेंट ऑफ़ एंथ्रोपोलॉजी, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़

[xxxiii] डॉ. रूप कुमार शर्मा, सिरमौर का इतिहास (राजनितिक एवं सांस्कृतिक), 2015

[xxxiv] डॉ. वाई.एस.परमार, पॉलीएंड्री इन द हिमालयाज, 1975, विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

[xxxv] वही (7)

[xxxvi] वही(27)

[xxxvii] वही (34)

[xxxviii] श्री वेद ठाकुर, आयु 68 वर्ष, राजगढ़, सिरमौर, हि० प्र०, साक्षात्कार तिथि, 2 अप्रैल, 2024

[xxxix] श्रीमती सुरमी देवी, आयु 67 वर्ष, ग्राम झकांडो, शिलाई, सिरमौर, साक्षात्कार तिथि, 12 मार्च, 2024

[xl] श्रीमती नीमा, आयु 72 वर्ष, नौहराधार, साक्षात्कार तिथि, 16 मार्च, 2024

[xli] श्रीमती रुकमी देवी, आयु 85, ग्राम चियोग, तह. कमरऊ, साक्षात्कार तिथि, 21 मार्च, 2024